ज़्यान के श्लोक

[मैडम ब्लैवेट्स्की की 'गुप्त ज्ञान संहिता'
(सीक्रेट डॉक्ट्रिन) का मूल आधार]

सटीक

टीकाकार

पंड्या वैजनाथ

गुप्त ज्ञान संहिता

के

ज्यान के श्लोक

(मैडम ब्लैवेट्स्की की 'सीक्रेट डॉक्ट्रिन' का मूल आधार)

हिंदी टीकाकार

रायबहादुर पंड्या बैजनाथ बी. ए.

इंडिअन बुक शॉप,
कमच्छा, बनारस-१.

इंडिअन बुक शॉप,
थिओसॉफिकल सोसायटी,
बनारस १.

प्रथम संस्करण
अक्टूबर १९५४

मूल्य १)

मुद्रक :
श्री रामेश्वर पाठक,
तारा यन्त्रालय,
कमच्छा, बनारस १.

प्रकाशक के दो शब्द

राय बहादुर पंड्या बैजनाथजीने हिन्दीमें थिऑसोफीका साहित्य सुलभ करनेमें अथक परिश्रम किया है। अनेक पुस्तकोंका अनुवाद या भावानुवाद आपने स्वयं किया और अपने निजीव्ययसे उन्हें प्रकाशित कराया। 'एन्शियंट विज्डम', 'पाथ ऑफ डिसाइप्लशिप' 'देवकानिक लेन' 'इनविज़िब्ल हेल्पर्स' 'नेचर ऑफ मिस्टिसिज़्म' 'एट द फीट ऑफ द मास्टर' 'लाइट ऑन द पाथ' के अनुवाद 'सनातन ज्ञान' 'मुमुक्षुका मार्ग' 'स्वर्ग लोक' 'अदृश्य सहायक' 'भावना योग' 'श्रीगुरु चरणोंमें' तथा 'मार्ग प्रकाशिनी' के नामसे आपने प्रकाशित कराये।

'इनर लाइफ' 'मास्टर्स एण्ड द पाथ' 'द चक' 'द कुंडलिनी' 'टेक्स्टबुक ऑफ थिऑसोफी' 'मैन: व्हेन्स, हाऊ एण्ड व्हिद्‌र ?' 'मैन एण्ड हिज़ बॉडीज़' 'लाइफ आफ्टर डेथ्' के संक्षिप्त रूपांतर 'आन्तर जीवन' 'जीवन्मुक्त और मुक्ति मार्ग' 'चक्र और कुंडलिनी' 'थिऑसोफी परिचय' 'मानव कहाँसे, कैसे और किधर?' 'मनुष्यके कोष' 'मरण और मरणके पश्चात्' नामसे प्रकाशित किये। 'भारत समाज पूजा' के मंत्रोंका सटीक और सविधि संस्करण प्रकाशित किया। थिऑसोफीके ज्ञानका अपूर्व भंडार है मैडम ब्लैवेट्स्कीका महान् ग्रंथ 'सीक्रेट डॉक्ट्रिन' या 'गुप्तज्ञान संहिता'। इस बृहत् ग्रंथका निर्माण मैडमने जीवन्मुक्त महात्माओंकी सहायतासे 'ज़्यानके श्लोक' नामक एक सेंज़र भाषाकी अत्यंत प्राचीन पोथीके आधार पर किया था। इन 'ज़्यानके श्लोकों' का

मूल पाठ भी अंग्रेज़ीमें प्रकाशित किया था। पंड्याजी इधर कई वर्षोंसे इस मूल पोथीका सटीक अनुवाद करनेमें व्यस्त थे। बीचमें आप रुग्ण हो गये थे, इसलिए इसका प्रकाशन अबसे पहिले न हो सका। अब आपने इसे प्रकाशित कराया है।

यह एक अपूर्व पुस्तक है और विश्व-विकास तथा मनुष्य-रचनाके संबंधमें थिऑसोफीके समस्त सिद्धांत इन श्लोकोंमें आ जाते हैं।

पंड्याजीके हम, और समस्त थिऑसोफी प्रेमी हिंदी संसार भी, अत्यंत आभारी हैं कि आपने हमें इस ग्रंथको हिंदी भाषामें सुलभ कर दिया।

विषय सूची

प्रस्तावना १
महाविश्व और आधुनिक विचार ९
जगत-रचना-विधि १२
नासदीय सूक्त (ऋग्वेदसे) १६

१ विश्व विकास

पद्य खंड १ विश्वकी रात्रि १९
,, २ पार्थक्यका विचार २६
,, ३ विश्वकी जागृति ३०
,, ४ सप्तदेव-परंपराएँ ४०
,, ५ फोहत ४६
,, ६ हमारा जगत् : वृद्धि और विकास ५३
,, ७ पृथ्वी पर मनुष्यके पितृ ५९
उपसंहार ६६

२ मनुष्य रचना

पूर्व कथन ७३
पद्य खंड १ सचेतन जीवनका आरंभ ७५
,, २ बिना सहायताके प्रकृति असमर्थ ७८
,, ३ मनुष्य बनानेके प्रयत्न ८१
,, ४ प्राथमिक जातियोंकी उत्पत्ति ८३
,, ५ द्वितीय मूलजातिका विकास ८६
,, ६ अंडजका विकास ९०

,,	७ अर्ध दैवी पुरुषोंसे प्रथम जाति तक	....	९२
,,	८ पशुस्तन-पायीका विकास	....	९५
,,	९ मनुष्यका अंतिम विकास	....	९७
,,	१० चतुर्थ जातिका इतिहास	....	१००
,,	११ तृतीय और चतुर्थ जातियोंकी सभ्यता और उनका विनाश	....	१०५
,,	१२ पाँचवीं जाति और उनके शिक्षक	....	१०८
	उपसंहार	....	११०

—:o:—

प्रस्तावना

सन् १८८८ ई० में मैडम ब्लैवेट्स्की ने एक बड़े महत्व की पुस्तक *"सीक्रेट डॉक्ट्रिन"* अर्थात् *गुप्त ज्ञान संहिता* दो भागों में लिखी। प्रथम भाग में हमारे सौरजगत् की रचना का, और दूसरे भाग में मनुष्य की उत्पत्ति और विकास का वर्णन है। यह वर्णन एक गुप्त ग्रंथ *"ज़्यान"* (ध्यान) के आधार पर लिखा गया है। तिब्बत में अभी भी महत्व के बहुत से ग्रन्थ शिगेट्ज़ी ग्राम में टेश्यू लामा (Teshu Lama) के अधिकार में सुरक्षित रखे हैं। इन में एक संग्रह का नाम कियूटी (Kinti) है जिस में तीन प्रकार के ग्रन्थ हैं:—(१) सात गुप्त ग्रन्थ (२) इनके १४ टीका ग्रंथ दीक्षितों के लिए, सेंज़र (Senzar) भाषा के। (३) ३५ ग्रन्थ, साधारण जनता के उपयोग के लिए, जो वहाँ के प्रायः सब मठों में पाये जाते हैं। ऊपर के १४ ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन हैं। इनके प्रथम ग्रंथ में से गुप्त ज्ञान संहिता के श्लोक लिये गये हैं। ऊपर के इन सब ग्रन्थों का आधार एक बहुत पुराना, जगत् के गुप्त ज्ञान का ग्रन्थ (Book of the Secret Wisdom of the World) नाम का है जिसमें सब गुप्त विद्याओं का संक्षेप में वर्णन है। ३५ ग्रन्थ इतने पुराने नहीं हैं। गुप्त ज्ञान संहिता में ग्रन्थकर्ता ने कहीं कहीं ऊपर के १४ टीका ग्रन्थों के दूसरे भागोंसे भी कुछ-कुछ उद्धरण लिये हैं। चतुर्थ मूलजाति की टोल्टेक उपजाति के पूर्वज इस सेंज़र भाषा को समझते थे; उन्हें वह भाषा तृतीय मूलजाति के ऋषियों से, और इनको प्रथम और द्वितीय मूल जाति के देवों से मिली थी। पाँच हज़ार वर्ष से उस भाषाका बोलना बन्द हो गया है और

उसे अब बहुत कम लोग समझ सकते हैं। गुप्त ज्ञान संहिता में इन श्लोकों का अनुवाद आधुनिक सरल भाषा में दिया गया है। ज्यान की पुस्तक का वर्णन, भगवान् श्री कृष्ण वासुदेव की मृत्यु एवं कलियुग के प्रारंभ, अर्थात् ई. पू. ३१०० तक मिलता है। गुप्त ज्ञान संहिता के दूसरे भाग में लगभग सन् १९०० ई० तक की भविष्य की बातें लिखी हैं। उसके अनुसार, कलियुग के प्रथम ५००० वर्षों के अन्त से एक नये युग का आरम्भ होता है जिसमें भिन्न-भिन्न मनुष्य जातियों के बीच के बहुत से कर्म-ऋण चुकाये जायँगे।

आगे चलकर मैडम ब्लैवेट्स्की उस ग्रन्थ का वर्णन इस प्रकार करती है :—

एक पुरातन हस्तलिखित ग्रन्थ, ताड़पत्रों का एक संग्रह, जिसे किसी अज्ञात विधि से जल, अग्नि और वायु से अभेद्य बना दिया है, लेखक के आँख के सामने है। उसके प्रथम पृष्ठ पर काली भूमि पर एक पूर्ण श्वेत वर्तुल बना हुआ है। दूसरे पृष्ठ पर वर्तुल तो वही है परन्तु उसके केन्द्र में एक बिन्दु भी बना है। प्रथम पृष्ठ का अर्थ यह है कि विश्व अपनी अव्यक्त अवस्था में है और शक्ति अपनी निन्द्रा की स्थिति में है। शुद्ध श्वेत वर्तुल के केन्द्र में बिन्दु के उपस्थित होने का अर्थ यह है कि अब साम्यावस्था में भेद का उदय हुआ है। यह विश्व अंड के भीतर का बिन्दु, या अंकुर विश्व बन जावेगा। यह बिन्दु समय-समय पर अव्यक्त या सुषुप्त और समय-समय पर जागृत और क्रियावान् होता है। मनुस्मृति (अध्याय १-५) में भी लिखा है कि यह संसार सृष्टि के पहले प्रलयकाल में अन्धकारमय, अज्ञात और अव्यक्त रूप में था। काली भूमिपर पूर्ण श्वेत वर्तुल का अर्थ यह भी है कि मनुष्य को ज्ञान, चाहे वह

धुन्धला और अन्धकारयुक्त ही क्यों न हो, इसी लोक में प्राप्त हो सकता है। इसी लोक में विकास की क्रिया आरम्भ होती है। प्रलयकाल में इसी सुषुप्त आत्मतत्त्व में, भविष्य विश्व रचना और देवरचना का विचार सन्निहित है। निर्गुण ब्रह्म ही एक मात्र जीवन सत्ता, अज, सनातन, अव्यक्त परन्तु विश्वव्यापी, अनादि-मध्यान्त है। पर वह कल्पकाल में व्यक्त होता रहता है। दो कल्पों के बीच में वह अव्यक्त असत्, अचेतन, निरपेक्ष चेतनायुक्त, अगम्य एक मात्र सत् है। उसका एक मात्र लक्षण जो लक्षण भी वही है, अनन्त गति है, जिसे गुप्त ज्ञान की भाषा में "दीर्घश्वास" कहते हैं। गतिहीन में दिव्यता नहीं हो सकती पर वास्तव में इस विश्वात्मन् में कोई भी वस्तु निरपेक्ष रीतिसे गतिहीन है ही नहीं।

गुप्त ज्ञान का कथन है कि एक अनन्त, और अज्ञेय तत्व पूर्ण अनन्त काल से स्थित है और प्रत्येक कल्प के आदि में क्रियावान् और कल्पान्त, प्रलयारम्भ में निष्क्रिय होता है। कल्प के आरंभ में वह सनातन, अक्षर भीतर से बाहर की ओर प्रसरता है जिसका फल अन्त में व्यक्त, दृश्य जगत् होता है। इसी प्रकार कल्प के अन्त और प्रलय के आरम्भ में, ईश्वरीय तत्व का संकोच होकर व्यक्त जगत् का धीरे-धीरे अन्त होता है और केवल अन्धकार मात्र रह जाता है।

उक्त ग्रन्थ के तृतीय पृष्ठ पर वर्तुल का केन्द्र-बिन्दु उस वर्तुल का व्यास बन जाता है, जिसका अर्थ यह है कि सर्वव्याप्त अनन्त के भीतर दैवी मूलप्रकृति कार्यवती है। बिन्दुयुक्त वर्तुल का अर्थ तत् के भीतर मूलप्रकृति का उदय होना था। जब वर्तुल के भीतर आड़ी रेखा पर एक खड़ी रेखा बन जाती है तब मनुष्य-सृष्टि तृतीय मूलजाति में पहुँच कर स्त्री

पुरुष में विभक्त हो जाती है। उसके पूर्व उत्पत्ति अण्डज थी और उसके भी पूर्व एक शरीर के दो भाग बनकर वृद्धि होती थी, जैसी एमीबा या कीटाणुओं में अभी पाई जाती है। वर्तुल का लोप होकर केवल स्वस्तिक + के रहने से मनुष्य के पूर्ण पतन* का अर्थात् चौथी मूलजाति का आरम्भ संबोधित होता है।

गुप्त ज्ञान के तीन प्रधान सिद्धान्त ये हैं :—

(क) १. एक सर्व शक्तिमान् अनन्त सनातन, अक्षर, अचिन्त्य और अवर्णनीय सत् है। जो कुछ हुआ, है अथवा होगा उसका यह मूलरहित मूल या अकारण कारण (Causeless Cause) सत् असत् रूप है।

इस सत् (Be-ness) के दो रूप बनाये गये हैं। एक तो निरपेक्ष अमूर्त अवकाश (Absolute Abstract Space) और दूसरा निरपेक्ष अमूर्त गति (Absolute Abstract Motion) जो अप्रतिबद्ध चेतना भी है।

२. इस अकारण कारणसे प्रथम कारण या प्रथम अव्यक्त लोगस् (Logos) उत्पन्न होता है। इसी का अमूर्त अवकाश (Abstract Space) अमूर्त गति (Abstract Motion) और अनपेक्ष काल (Duration) के रूप में वर्णन किया है। ये सत्ता अचिन्त्य, देशकाल से परे एक निरपेक्ष शून्य सी (Absolute Negation) है। इसे शिव तत्व कह सकते हैं।

३. इस अव्यक्त प्रथम लोगस् (Logos) से परिवर्तन होकर अन्त में तृतीय लोगस (प्रकृति-पुरुष) या चेतना, या द्रष्टा-

---

* ईसाई विश्वास के अनुसार स्त्री-पुरुष के भेद का ज्ञान ही मानव के पापगर्त में पतन का आरंभ है। कदाचित् इसी का संकेत यहाँ है।

दृश्य का जहाँ भान होने लगता है, उस परिवर्तन की दशा को द्वितीय लोगस् या विष्णु तत्व कहते हैं। मूल प्रकृति (Cosmic Substance) महत् (Cosmic Ideation) और जीवन (Life) और दैवी प्रकृति या दैवी शक्ति, ये व्यक्त रूप उस लोगस् के हैं।

व्यक्त प्रकृति, मन, गति या जीवन-शक्ति, व्यक्त विश्व और उसके संचालक देवगण, दैवी शक्तियाँ, प्रकृति और मनको जोड़नेवाली शक्ति, ये सब ब्रह्मा के कार्य हैं।

प्रकृति, पुरुष या चेतना, ये स्वतंत्र सत्ताएँ नहीं हैं। परन्तु वे निरपेक्ष ब्रह्मन् के दो रूप हैं जो बद्ध जीव और व्यक्त जगत् के प्रगट होने के लिए आवश्यक हैं। मूलप्रकृति की सहायता के बिना, विश्व-विचार-शक्ति या महत् (Cosmic Ideation) व्यक्ति गत चेतना का मूल, यह प्रगट नहीं हो सकता। व्यक्त होने के लिए द्वैत की, प्रकृति-पुरुष की, आवश्यकता पड़ती है। प्रकृति पुरुष को जोड़ने के लिए दैवी शक्ति, दैवीप्रकृति, (Cosmic Energy) है जो मन या महत् और प्रकृति के बीच में पुल के समान है अर्थात् दोनोंको मिलाती है। इस दैवी शक्ति को आगे जाकर फोहत् (Fohat) कहा है। इसके नाना रूप विद्युत्, चुम्बकत्व, प्रकाश, कुंडलिनी आदि आगे जान पड़ेंगे। उसे फोहत् (Fohat) और अग्निमय बवंडर या बगूला (Fiery whirlwind) भी कहा है।

(ख) यह ऊपर दिया गया वर्णन, परब्रह्म में जो क्रिया होती है, उसका है। दूसरा सिद्धान्त यह है कि महाविश्व अपने समष्टि या पूर्ण रूप में अनन्त, नित्य है। इसमें समय समय पर विश्व उत्पन्न होते हैं और लय होते हैं, जैसे समुद्र में तरंगें उत्पन्न होती हैं और लय होती हैं; या समुद्र में जैसे ज्वार भाटा होता है वैसे ही ज्वार में रचना और भाटे में लय, होता है।

(ग) जीवात्मा और परमात्मा मूलतः एक ही हैं। प्रलय के अन्त में मूलप्रकृति ही प्रथम जागती है—इसी को अवकाश (Space) और माता-पिता कहा है। विश्व क्रिया आरंभ होने के पूर्व अवकाश (Space) को माता कहा है। ईश्वर को भी परब्रह्मन् निज-रूप में नहीं दिखाई देता; माया या मूलप्रकृति से ढँका हुआ दिखाई देता है।

इस ध्यान की पुस्तक में जो रचना-सूत्र या क्रम या नियम दिया है, वह क्रम आवश्यक परिवर्तन के साथ सब रचनाओं में लागू होता है। उसी के अनुसार आवश्यक परिवर्तन के साथ सूर्यमंडल की, ग्रहमाला की, और एक पृथ्वी या गोले की रचना का क्रम होगा। सात पद्य-खंडों (Stanzas) में रचना के सात दर्जे या सात सीढ़ियाँ दी हैं।

सारे महाविश्व-विकास के संबंध का गुप्तज्ञान इस युग में कोई न समझ सकेगा। बहुत कम जीवन्मुक्त महात्मा भी इस विषय में विचार दौड़ाते हैं या तर्क करते हैं, और न उन्हें तर्क करने की अनुज्ञा ही है। ये पद्य खंड (Stanzas) हमारे सूर्य मंडल रूपी विश्वकी और विशेषकर हमारी पृथ्वी माता की उत्पत्ति और विकास का ही वर्णन करते हैं। ऊँचे से ऊँचे देवता या आत्मा भी इन अनन्त विश्वों की व्यवस्था को नहीं जान सके हैं और न इन अनन्त विश्वों के परे उस महा सूर्य अर्थात् सब सूर्यों के परम सूर्य के राज्य में प्रवेश कर सके हैं।

प्रथम पद्य खंड में रात्रि की अर्थात् प्रलय काल की, अव्यक्त ब्रह्म की स्थिति का वर्णन है। तब तक उषा का आरम्भ अर्थात् उसकी सुषुप्ति का अन्त नहीं हुआ था। इस अवस्था का वर्णन नेति नेति रूप से ही हो सकता है क्यों कि वह पूर्ण निरपेक्ष अवस्था है।

द्वितीय पद्य खंड में वर्णित स्थिति साधारण शिक्षित व्यक्तिके लिए प्रथम पद्यखंड कीसी ही है। अब जगने की बाट देख रहे हैं।

तृतीय पद्यखंड में कल्पारंभ हो कर व्यक्त जगत की रचना का आरम्भ होता है। अर्थात् प्रलय के आरम्भ में सब से बड़े सूर्य मंडल से लेकर अणु तक जो जीवात्मा एक में लय हो गये थे वे अब फिर निकलते हैं। सब से ऊँचे लोकों का बनना आरम्भ होता है। मूलप्रकृति प्रथम सर्वत्र एकरस थी, सो अब ईश्वर की विचारक्रिया से वह कहीं-कहीं दही सी जमी हुई और कहीं-कहीं पतली बन गई। इस दशा के उत्पन्न करने की शक्ति का नाम (Fohat) फोहत शक्ति है। इसे सब शक्तियों की नियामक शक्ति कहना चाहिये। फोहत प्रकृति के एक भाग के सब अंगों पर एक ही साथ क्रिया करता है।

चतुर्थ पद्यखंड में विश्वअंड के एक बीज से ब्रह्मा के सात मानसपुत्रों की—सात सचेतन देवपरंपराओं की—उत्पत्ति का वर्णन है। ये सारे व्यक्त जगत् के बनाने और गढ़ने वाले हैं। ये ज्ञानी देववर्ग विश्व को ईश्वर के विचार-रूपानुसार बनाते और चलाते हैं। प्रकृति के नियम इन्हीं मे स्थित हैं। यह देवों की रचना हुई।

पंचम पद्यखंड में जगत की रचना का क्रम है। प्रथम तो मूलप्रकृति सर्वत्र व्याप्त है। फिर अग्निरूप बगूला (Fiery Whirlwind) अपनी क्रिया से ज्योतिष और विज्ञान शास्त्रों का नेब्युला (Nebula) या निहारिका बनाता है; जिसके ठंडे होने में नाना परिवर्तनों के पश्चात् और पीछे से एक सूर्यमंडल या ग्रहमाला या एक ग्रह—जैसी आवश्यकता हो—बनता है।

इसके आगे का विकास या रचना छठवें पद्यखंड में वर्णित है, जिससे गोले की रचना चतुर्थ परिक्रमा काल तक, अथवा

हमारे समय तक की, वर्णित हो जाती है। इस पद्यखंड के चौथे श्लोक से प्रलयान्तर-विश्व-रचना-वर्णन का अन्त हो जाता है। अब आगे, हमारे सूर्यमंडल और ग्रहमालाओं का वर्णन तो अनुमान द्वारा, और हमारी ग्रहमाला और हमारी पृथ्वी (चौथे गोले) का इतिहास वर्णित है। इससे आगे हमारी पृथ्वी के विकास का वर्णन है।

सप्तम पद्यखंड में मनुष्य की उत्पत्ति तक का वर्णन है। इस प्रकार गुप्त ज्ञान संहिता का प्रथम खंड समाप्त होता है।

महाविश्व और आधुनिक विचार

सर जेम्स जीन्स, अपने ग्रन्थ (Mysterious Universe) में लिखते हैं कि कहीं-कहीं कोई इतना बड़ा तारा मिलता है जिसमें करोड़ों पृथ्वियाँ समा सकती हैं। विश्व में सब तारों की संख्या प्रायः उतनी है जितनी संसार के सब समुद्रों के किनारों की रेत के कणों की[१]। यही बात देवी भागवत में लिखी है कि रेत के कणों की गिनती कदाचित् हो भी सके, परन्तु विश्वों की गिनती नहीं हो सकती। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि की भी गणना नहीं हो सकती, क्योंकि प्रत्येक विश्व में ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि अलग-अलग होते हैं[२]। सर आर्थर एडिंग्टन अपने ग्रन्थ (The Expanding Universe) में लिखते हैं कि सूर्य, सब दृश्य तारे और दूरबीन से दिखनेवाले असंख्य तारासमूहों का विचार कर लेने पर भी हमें कुछ अन्त नहीं मिलता; इतनी शोध पर मानों तारों के एक द्वीप की ही शोध हुई। ······इसके आगे ऐसे और भी द्वीप हैं·········एक के बाद दूसरा,

---

1. "Here and there we come upon a giant Star, large enough to contain millions and millions of Earths. and the total number of stars in the Universe is probably something like the total number of grains of sand on all the sea shores of the world." (Chap. I.)

२. संख्या चेत् रजसामस्ति विश्वानां न कदाचन।
ब्रह्मा विष्णु शिवादीनां तथा संख्या न विद्यते।
प्रति विश्वेषु सन्त्येव ब्रह्मा विष्णु शिवादयः।
देवीभागवत—९। २। ७।

ऐसे अनेक तारासमूह एवं द्वीपसमुदाय फैले हुए हैं कि हमारी दृष्टि उनको देखने में असमर्थ हो जाती है। ·········प्रत्येक तारासमूहरूपी द्वीप में दश लक्ष तारों के हजारों समूह माने जाते हैं। ·········ऐसी द्वीपरचनाएँ बहुत अधिक हैं। साधारण सरल गणनासे अन्दाज लगाया जाता है कि हमारी आधुनिक दूरबीनों की पहुँच में दश लक्ष से अधिक ऐसी रचनाएँ दिखाई पड़ेंगी[1]।

इनकी दूरी दस लक्ष प्रकाश-वर्ष से पन्द्रह सौ लक्ष प्रकाश-वर्ष है। [2]तारा समूह द्वीपों की गणना १,००,००,००,००,०००, की जाती है। प्रकाश की गति प्रति सेकंड में १,८६,३२५ मील के

1. "When we have taken together the sun and all the naked-eye-stars and many hundreds of millions of telescopic stars, we have not reached the end of things; we have explored only one island. ········· Other islands lie beyond······A telescope shows many more—an archipelago of island galaxies, stretching away, one behind another, until our sight fails········· each island system is believed to be an aggregation of thousands of millions of stars·········The island systems are exceedingly numerous. From simple counts it is estimated that more than a million of them are within reach of our present telescopes. (*The Expanding Universe Chap. I.*)

2. Their distances·········from one million to 150 million light-years away·········The total number of them must be of the order of 100,000,000,000. *Ibid*

लगभग है। इस प्रकार हम एक मिनिट, घंटे, दिन, मास, और वर्ष की गति निकाल लें, तो प्रकाश वर्ष की दूरी ५८,५२, ७०,००,०९,००० मील के लगभग जान पड़ेगी। उसको दस लाख से गुणा करने से निकट के तारासमूह रूपी द्वीपों की दूरी का कुछ विचार हो सकेगा। हमारा सूर्य अपने ग्रहों समेत आकाश-गङ्गा के केन्द्र में स्थित किसी बड़े तारे के आस-पास प्रति सेकंड में २०० से ३०० किलो-मीटर (=१२५ मील के भगभग) के वेग से परिक्रमा करता है, अर्थात् यह तारा हमारे सूर्य का अधिपति है[1]।

1. It has been found that the sun is persuing an orbit round the centre of the Milky Way system and has an orbital speed from 200 to 300 Kilometres per second. *Ibid*

जगत्-रचना-विधि

गुप्त-ज्ञान-संहिता के श्लोकों को समझने में कदाचित् कुछ और ग्रंथों के अवतरणों से पाठक को कुछ सहायता मिल सके इसलिए कुछ अवतरण यहाँ दिये जाते हैं।

श्री जिनराजदासजी अपनी पुस्तक (First Principles of Theosophy) में लिखते हैं :—

दैवी विद्या का कथन है कि असंख्य तारों के समेत महाविश्व, चैतन्य सत्ता का एक स्वरूप (Expression) है। इस सत्ता को हम परम ईश्वर, अहुर्मज़्द, अल्लाह, लोगस, आदि कई नामों से जानते हैं। यह जीवन सत्ता एक पुरुष (Person) है ऐसा कहा जाता है। परन्तु पुरुष शब्द से हमें जिस उपाधि (शरीर) का बोध होता है वह उसमें नहीं है। यह भी कहते हैं कि महाविश्व का ईश्वर (Cosmic Logos) सदैव एक ही रहता है (एकमेवाद्वितीयं) परन्तु वह एक विश्व में अपनी शक्ति, त्रिमूर्ति रूप से, रचने वाले ब्रह्मा, पोषण करने वाले विष्णु, और संहारकर्ता शिव रूप से भरता है। भिन्न-भिन्न धर्मों में इनके भिन्न-भिन्न नाम हैं।

महाविश्व के ईश्वर (Cosmic Logos) या परमेश्वर के कार्य में सहयोग देने वाले उनके स्वभाव के रूप सात निम्नपदस्थ ईश्वर (Cosmic Planetary Logoi) हैं। विश्व के सब तारे, जो बड़ी बड़ी विकास क्रियाओं के केन्द्र हैं, इन बड़े सातें में से किसी एक के आधीन हैं, अथवा किसी प्रकार उनके जीवन के वैसे ही स्वरूप हैं जैसे वे अपने अधीश्वर स्वयं महाविश्व-ईश्वर (Cosmic Logos)-के जीवन के व्यक्त रूप हैं।

विश्वजीवन की इस अनन्त महत्ता में हमारे सौर-ईश्वर (Solar Logos) भी इस प्रकार इन सात में से किसी एक निम्नपदस्थ अधीश्वर के स्वरूप हैं। उनमें (एकमेवाद्वितीयं) परम ईश्वर के जीवन, प्रकाश, और महत्ता पूर्णरूप से प्रगट होते हैं। परन्तु हमारे लिए वे परमेश्वर ही हैं। इनके भी वैसे ही तीन रूप हैं और सात ग्रह-माला अधीश्वर (Planetary Logoi) भी हैं। जब हमारे ईश्वर अपने सारे मंडल में अपने ग्रहों की रचना का कार्य प्रारंभ करते हैं, तब वे महाविश्व (Cosmos) के एक क्षेत्र में अपने कार्य की सीमा नियत करते हैं। इस सीमा में महाविश्व की प्रकृति के मनोलोक (नीचे से तीसरे खंड) में वे अपने भविष्य जगत् के चित्र या रूप बना देते हैं अर्थात् अपने विश्व को इस लोक तक बनाकर स्थित कर देते हैं और देवगण उसी के अनुसार सृष्टि को बनाने या बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। इस सीमा के अन्दर हमारे सौर-जगत् की कोई दृश्य या अदृश्य प्रकृति तब न थी। केवल महाविश्व की मूल प्रकृति ही सर्वत्र व्याप्त थी। इसे थिओसॉफिकल साहित्य में कॉयलन (Koilon) कहते हैं। इस मूल प्रकृति में महाविश्व का ब्रह्मारूप ईश्वर (Cosmic Third Logos) अपनी शक्ति, दैवीप्रकृति या फ़ोहत (Fohat)) डालकर मूलप्रकृति में छेद या गड्ढे करता है और उनमें अपनी शक्ति को भर देता है। इस प्रकार दैवीप्रकृतियुक्त बुद्बुद् बन जाते हैं। प्रत्येक बुद्बुद् में महाविश्व के ईश्वर की तृतीय मूर्ति की (ब्रह्मा की) चेतना का अंश रहता है। अब हमारे सौर-जगत् के ईश्वर की तृतीय मूर्ति (ब्रह्मा) इन बुद्बुदों को इकट्ठा कर, सात-सात बुद्बुदों का एक एक चक्राकार (Spiral) बना देती है। उसकी इच्छा-शक्ति के योग से ये बुद्बुद् इसी चक्राकार रूप में बने

रहते हैं। इन प्राथमिक सात सात बुद्बुदों के सात सात चक्राकार समूहों को लेकर, सौर ब्रह्मा पूर्ववत् क्रिया करके, द्वितीय श्रेणी के (४९ बुद्बुदों के) समूह को बनाता है। यह द्वितीय क्रम का समूह हुआ। इस प्रकार छः क्रम सौर ब्रह्मा द्वारा बनाये जाते हैं। प्राथमिक बुद्बुदों से आदि तत्व अथवा महा-परानिर्वाण लोक बनता है। इस लोक का अणु एक एक बुद्बुद का बना रहता है। द्वितीय लोक—परानिर्वाण या अनुपादक तत्व का परमाणु ४९ बुद्बुदों का बना रहता है। निर्वाण लोक या आत्मिक लोक का परमाणु $४९^{२}$ = २४०१ बुद्बुदों का बना रहता है। इस प्रकार बुद्धिलोक का परमाणु $४९^{३}$ बुद्बुदों का, मनोलोक का परमाणु $४९^{४}$ = २४०१ × २४०१ बुद्बुदों का, एस्ट्रल का $४९^{५}$, और स्थूल का परमाणु $४९^{६}$ = २४०१ × २४०१ × २४०१ परमाणुओं का और कुछ अन्य परमाणुओं का बना रहता है। सभी में ब्रह्मा की चेतना है। यदि वह चेतना एक क्षण के लिए भी लोप हो जाय तो सब बुद्बुद् लय अवस्था को प्राप्त हो जावेंगे।

श्री पावरी अपनी पुस्तक—Theosophy Explained में कहते हैं कि सनातन, सर्वव्यापक, अनन्त, अविकारी, अचिन्त्य सत्ता है जिसके विषय में कोई विचार हो नहीं सकता। इसे परमब्रह्मन्, परमात्मन्, निर्गुण ब्रह्म, अव्यक्त कहते हैं। इसकी व्यक्त स्थिति को सगुण ब्रह्म, व्यक्त ईश्वर, परमेश्वर कहते हैं। सब उसी "तत्" ब्रह्मन् से प्रगट होता है, और उसी में लय होता है। जैसे समुद्रजल में तरङ्ग उठकर फिर उसी में लय हो जाती है, वैसे ही इस पूर्ण, ब्रह्मन् में सब महाविश्व प्रगट होकर उसी में लय होता है। जैसे तरंग समुद्र-जल का रूपान्तर मात्र है, वैसे ही विश्व भी एक "सत्ता" का रूपान्तर मात्र है।

"सर्वं खलु इदं ब्रह्म" यह सब वास्तव में ब्रह्म ही है। इस प्रकार सब विश्व उसी एक ब्रह्मन् में से उत्पन्न होकर उसी में लय हो जाते हैं।

इस ब्रह्मन् में से एक ईश्वर (Logos) निकल कर अपने ऊपर नियन्त्रण कर, अपने कार्य क्षेत्र की सीमा नियत करते हैं। ये व्यक्त ईश्वर हुए। व्यक्त और अव्यक्त, ये केवल ब्रह्मन् की दो अवस्थाएँ हैं। यह व्यक्त ईश्वर कोई दूसरा ईश्वर (Logos) नहीं है परन्तु उपर्युक्त सगुण ब्रह्मन् ही है। यही महाविश्व का परमेश्वर (Cosmic Logos) है। परमेश्वर सर्व कारणों का कारण, मूल, पुरुषोत्तम, परम आत्मा है। यह एक रूप है। इनका दूसरा रूप मूलप्रकृति है। ईश्वर अपने एक अंश से अपने महाविश्व को स्थापित करते हैं। इस विश्व में ये तीन रूप से—ब्रह्मा, विष्णु, शिव रूप से—कार्य करते हैं। इनके नीचे कार्य करने वाले सात गौण अधीश्वर हैं। महाविश्व के सब तारे जिनमें विकास क्रिया चल रही है, इन सात में से किसी एक के आधीन हैं × × × उस एक सत्ता में अनन्त विश्व और अनन्त सूर्य-मंडल हैं। प्रत्येक सूर्य-मंडल का ईश्वर, सौर-ईश्वर—(Solar Logos) कहलाता है। ये ही हमारे ईश्वर हैं। ये जगत् के अणु-अणु में व्याप्त हैं। किसी भी सूर्य-मंडल के विकास में, उसके ईश्वर (Logos) के अति उच्च तीन तत्व जिन्हें उस मंडल की त्रिमूर्ति (या Logoi) कहते हैं, महाविश्व की त्रिमूर्ति से मिलती और उनके समान ही कार्य करती पाई जाती हैं।

नासदीय सूक्त (ऋग्वेद १०।१२९।१-७)

भाषान्तर-कर्ता पांडेय पं० श्री रामनारायण दत्त जी शास्त्री

'असत्' नहीं उस प्रलय काल में, 'सत्' भी नहीं रहा कारण ;
हुआ भूमि-पाताल प्रभृति भुवनों की सत्ता का वारण ।
अन्तरिक्ष भी नहीं, नहीं वे स्वर्ग आदि रह गये प्रदेश ;
क्या आवरण, कहाँ किसके हित, गहन गंभीर नीर था शेष ॥ १ ॥
मृत्यु नहीं थी, नहीं अमरता, रात-दिवस का ज्ञान नहीं ;
था चेतन, बस एक ब्रह्म ही, हैं जिसके मन-प्राण नहीं ।
था माया के साथ विराजित ब्रह्म मात्र ही सत्तावान्
विद्यमान थी वस्तु यहाँ पर उससे भिन्न न कोई आन ॥ २ ॥
आवृत हो अज्ञान-तिमिर से पहले यह सब था तम रूप,
दुग्ध राशि में मिलित सलिलसा अखिलविश्व अज्ञात अरूप ।
तुच्छ अविद्या से छादित जो तम से एकीभूत हुआ,
वही विश्व विभु के तप की महिमा से फिर उद्भूत हुआ ॥ ३ ॥
हुआ सृष्टि रचना के पहले ईश्वर के मन में संकल्प,
क्यों कि पुरातन कर्मराशि थी बीजरूप में उदित अनल्प ।
ज्ञानी पुरुषों ने मेधा से निज उर में जब किया विचार,
'सत्'[1] के साधनभूत कर्म का हुआ 'असत्'[2] में साक्षात्कार ॥ ४ ॥
तना सृष्टि का सूर्य-रश्मि सा सहसा ही सब ओर वितान,
पहले मध्य लोक में, ऊपर या नीचे—कुछ हुआ न भान ।
कर्मों के कर्ता-भोक्ता थे अगणित जीव हुए उत्पन्न,
भोग्य स्थान महान् भूत भी, भोक्ता उच्च अधम है अन्न[3] ॥ ५ ॥

---

१ जगत् । २ अव्याकृत कारण । ३ भोग्यप्रपञ्च ।

किस निमित्त, किस उपादान से प्रकट हुई नानाविध सृष्टि—
कौन जानता, कौन बतावे, किसकी वहाँ पहुँचती दृष्टि ।
पैदा हुए देवगण भी तो भूतसर्ग के ही पश्चात् ;
फिर किस से सब सृष्टि हुई है, यह रहस्य किसको है ज्ञात ॥ ६ ॥
जिस विभु से इस विविध सृष्टि का हुआ प्रगट अतिशय विस्तार,
वही इसे धारण करता है, रखता था कि बिना आधार ।
जो इस जग का परम अधीश्वर रहता परम [1]व्योममय देश,
वही जानता या न जानता ; नहीं अन्यका यहाँ प्रवेश ॥ ७ ॥

कल्याण १९६० के सौजन्य से ।

---

१ परम-व्योम नाम का प्रसिद्ध परमधाम ।

गुप्तज्ञान-संहिता के ध्यान के श्लोक

१ विश्व-विकास

पद्य खंड १

विश्व की रात्रि

१ श्लोक:—सनातन माता (Space = आकाश, अवकाश, व्योम) अपने नित्य-अदृश्य वस्त्रों से आच्छादित, पुन: सात कल्प पर्यन्त, सो चुकी थी।

टीका:—अदृश्य वस्त्र = प्रकृति की जड़, मूलप्रकृति—अपने अविभक्त आदि रूप में।

सात कल्प = ३१,१०,४०,००,००,००,००० मानव वर्ष।

परब्रह्म की तो कल्पना नहीं हो सकती परन्तु उसके पश्चात् हम मूलप्रकृति की ही कल्पना कर सकते हैं। ईश्वर को परब्रह्म मूलप्रकृति से ढका हुआ दिखता है। इस अव्यक्तमूल-प्रकृति में स्थित और गूढ़ अव्यक्त, प्रथम लोगस (Logos) या हिन्दुओं के शिव दीख पड़ते हैं। इससे व्यक्त लोगस या हिन्दुओं के विष्णु, अर्थात् प्रकृति-पुरुष की अवस्था और उनके परे तृतीय लोगस या ब्रह्मा (रचने वाले) होते हैं, जिन्हें महत् भी कह सकते हैं। मूलप्रकृति को अदिति भी कहा है। जैसे मन्वन्तर में सात कल्प होते हैं, उसी प्रकार प्रलय काल के भी सात कल्प कहे हैं। सात वस्त्र वाली सनातन माता परब्रह्म से भिन्न है। कारण रहित कारण से पुरुष और प्रकृति व्यक्त होते हैं। यहाँ पर

सनातन माता से मलप्रकृति का अर्थ लिया गया है क्योंकि ब्रह्म के विषय में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता है। अवकाश (Space) के अविभक्त और विभक्त, दो रूपों का विचार किया गया है और उसे परमेश्वर (Deity) की संज्ञा दी गई है।

आगे जाकर उपसंहार में बताया है कि परब्रह्म और मूल प्रकृति वास्तव में एक ही वस्तु हैं पर व्यक्त जगत के भाव से दो रूपों में दीख पड़ते हैं। परब्रह्म प्रकृति और पुरुष दोनों से परे हैं। सनातन माता को टीका में सनातन, नित्य, सर्वकारण, अज्ञेय देव कहा है, जिसके अदृश्य वस्त्र, सब प्रकृति की गूढ़ जड़ हैं। कभी कभी प्रथम लोगस को नारायण और दूसरे को ईश्वर कहा है। महत् से ब्रह्मा का अर्थ है। उसे परमात्मा (= Universal Soul = Divine Ideation) कहते हैं।

२ श्लोक :—काल (Time) न था क्योंकि वह अभी तक सत्ता काल, निरपेक्ष स्थिति काल (Duration) के अनन्त हृदय में सोया पड़ा था।

टीका :—चेतना में परिवर्तन होने से काल (time) का भान होता है। जहाँ चेतना ही नहीं है वहाँ काल कैसे हो सकता है? तब वह "सोता पड़ा रहेगा"। सत्ताकाल (Duration) से परिवर्तन के अभाव का अर्थ है। सत्ताकाल आदि अन्त रहित निरपेक्ष है। काल आदि, अन्त, और विभाग सहित है। जैसे अवकाश (Space) आदि अन्त रहित है, वैसे ही सत्ताकाल भी आदि अन्त रहित है। सत्ताकाल और अवकाश अनन्त के रूपमात्र हैं। उसका हृदय, अर्थात् जहाँ दो कल्प, भूत और भविष्य मिलकर एक सनातन वर्तमान बन जाते हैं।

३ श्लोक :—विश्वव्याप्त मन न था क्योंकि उसके धारण करने के लिए कोई अहहि या दैवी व्यक्ति न थे।

टीका :—महत् (Cosmic mind, Divine Ideation in action) का व्यक्तिगत रूप मन है। विश्वव्याप्त मन महत् का भी आदि रूप है। उसे निरपेक्ष मन भी कह सकते हैं। प्रलय में मन और महत् का भी लय हो जाता है। प्रकृति के नियमों को चलाने वाले, ये सब दैवी व्यक्ति, इस समय प्रकृति नियम रूप और सामूहिक रूप में हैं। इनके कई दर्जे हैं। प्रत्येक व्यक्ति अलग अलग है। जब प्रलय काल में कोई व्यक्ति नहीं है तो मन कहाँ रहेगा? अहहि से, ब्रह्मा के सात मानस पुत्रों का, ईश्वर की सात ग्रहमालाओं के अधिपतियों का अर्थ है। ये ईश्वर से प्रगट होते हैं। वास्तव में विश्वव्याप्त मन अनन्त का एक दूसरा नाम है। अहहि आदि के तीन लोकों में रहते हैं और नीचे लोकों में उतरते उतरते मनुष्य के भी जीवात्मा बन जाते हैं। अहहि में स्वतंत्र इच्छा शक्ति नहीं है। ये प्रकृति नियमानुसार ही कार्य करते हैं।

४ श्लोक :—परमानंद (मोक्ष, निर्वाण) प्राप्ति के सात मार्ग नहीं थे। दुःख के महा कारण (निदान, माया) न थे। क्योंकि उन्हें उत्पन्न करने और उनसे मोहयुक्त होने के लिए कोई न था।

टीका :—अभी तक विश्व ईश्वर के विचार ही में था। इस कारण ब्रह्म प्राप्ति के सात मार्ग न थे। बौद्ध धर्म में दुःख के महा कारण १२ निदान माने गये हैं जैसे अज्ञान, चेतना, नामरूप, राग, जन्म, मरण, बुढ़ापा आदि। इनसे जन्म मरण होता है। जब जीव नहीं है तो जन्म मरण के कारण तथा मोक्ष के मार्ग

भी नहीं हैं। ज्ञान से माया दूर होकर दुःख भी दूर होता है। माया सब व्यक्त जगत में व्याप्त है।

सात मार्ग = एक अर्थ में श्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी अर्हत् और अर्हत् पद से परे तीन और ऊँचे पद हैं।

५ श्लोक :—सर्वत्र अनंत व्योम में अंधकार मात्र था क्योंकि पिता माता और पुत्र एकबार फिर एक हो गये थे और पुत्र नवेचक्र (कल्प) के लिए और उसमें अपनी यात्रा करने के लिए अभीतक जागृत नहीं हुआ था।

टीका :—प्रकाश के उत्पत्तिस्थान को यहाँ अंधकार कहा है। जब सब विश्व प्रलयकी अवस्था में था, तब न तो प्रकाश था, न प्रकाश देखने को आँख थी, और अंधकार सर्वत्र था। पिता माता से पुरुष प्रकृति का और पुत्र से विश्व का, अथवा शिव, विष्णु, ब्रह्मा का अर्थ है। प्रलय में सब लय हो कर एक हो जाते हैं। "अंधकार माता पिता हैं और प्रकाश उनका पुत्र है" ऐसा गुप्त ज्ञान का कथन है। माता पिता पुत्र से मनुष्य में स्थित विशुद्धात्मा (Monad) अन्तरात्मा (Ego) देहात्मा (या Personality) का भी अर्थ है।

चक्रः गोला, ग्रह के सात गोले या ग्रहमाला, सूर्यजगत् और विश्व होते हैं। अनंत व्योम = अवकाश रूपी माता। विश्वावकाश में गुणका समावेश है इसलिए वह उतरता दर्जा है। अंधकार = अज्ञेय जो विश्वावकाश में भरा है।

६ श्लोक :—सात दिव्य उच्च देवताओं और सप्त सत्यों का अस्तित्व न था और विश्व, संसार चक्र का (या कर्म नियम) पुत्र (वे मिट चुके थे) परनिर्वाण (सम्पूर्ण पूर्णता और शुद्धावस्था)

में लीन हो गया था। जो है (सत्) और नहीं भी है (असत्) उसकी महाश्वास से वह अभी बाहर निकलने को था। सब शून्यमय था।

टीका :—सात सत्यों में से अभी चार ही हमें मिले हैं क्योंकि अभी हम चतुर्थ मन्वन्तर और चतुर्थ परिक्रमा काल में हैं। इसीसे अभी तक चार वेद हैं। विश्वों का और अणुओं का सब का विकास होता है। जगत् की रचना और लय ब्रह्म की प्रश्वास और श्वास के समान हैं। "जो (सत) है और नहीं है" इससे अनंत अक्षय "महाश्वास" (Great Breath) परब्रह्म के एक रूप का अर्थ है।

सात दिव्य देवता = ब्रह्मा के सात पुत्र, सात ग्रहमालेश्वर। ये सात वर्ग रचना करते हैं। ये ही सात किरणों के अधिष्ठातादेव हैं। बहुत आगे जाकर अर्थात् बहुत रचना के बाद ये वस्तुओं के आदि विचाररूप (archetypes) नियत करते हैं जिससे उनके दृश्य प्रतिनिधि ध्यानी बुद्ध और उनके मनु और बोधिसत्वों द्वारा मूल जातियों के प्रधान लक्षण स्थिर होते हैं। ऐसे ही वे और सब जीवों के आदि रूप स्थिर करते हैं। इन श्रेणियों का मूल ब्रह्म में है इस कारण इनकी योग्यताका अंत नहीं है।

७ श्लोक :–अस्तित्व (प्राणधारण) के कारणों (जीवनतृष्णा) का नाश हो चुका था। दृश्यमान जो था और अदृश्य जो है, वह सनातन असत् में अर्थात् एक सत् में लीन-हो चुका था।

टीका—जीवनतृष्णा अणु से लगाकर सूर्य तक में है और ईश्वर की जगत् रचने की इच्छा से उत्पन्न नियम की छाया या प्रतिबिम्ब है। इस इच्छा का आदि कारण सदैव छिपा रहता है।

अस्तित्व के कारणों का नाश हो चुका था अर्थात् पिछले मन्वन्तर या कल्प के कारण नष्ट हो चुके थे, पर जो देश कालके परे का कारण है, वह इन से परे है। "दृश्य जो था" से पिछले मन्वन्तर के विश्व का अर्थ है जो अब अनन्तता में प्रवेश कर चुका है और नहीं है। "अदृश्य जो है" से सत् निरपेक्ष ब्रह्म का अर्थ है जिस के विषय में हम कुछ जानते नहीं हैं।

८ श्लोक :—एक अकेला सत्, अनन्त, निष्कारण, सर्वत्र स्वप्न रहित निद्रा में फैला हुआ था। उस अनन्त अवकाश में जीवन अचेतन भावसे धड़क रहा था जिस सर्वव्यापक सत् को 'दंगमा' (जीवनमुक्त) की खिली हुई आध्यात्मिक दृष्टि देख सकती है।

यह आध्यत्मिक दृष्टि साधारण दिव्य दृष्टि (clairvoyance)—से भिन्न है। सब से ऊँचे जीवनमुक्त की आध्यात्मिक दृष्टि है।

"एक अकेला सत्" से दूसरा दर्जा प्रगट होता है। "अनंत कार्य कारण" सर्वव्यापी पर अव्यक्त स्वयंभू मूलप्रकृति, सर्व वस्तुओं का मूल। "स्वप्नरहित निद्रा" या सुषुप्ति मनुष्य चेतना की एक अवस्था, गाढ़ सुषुप्ति यहाँ विश्व में भी कल्पना की गई है। विश्व को भी वही अवस्था थी। सुषुप्ति में कार्य होता है पर उसकी स्मृति नहीं रहती जैसे मेस्मर विद्या (mesmerism) में होता है।

९ श्लोक :—परन्तु जब विश्व का आलय (Over-Soul, प्रकृति या प्रधान) परमार्थ (Absolute Conscious, अव्यक्त चेतना, सत, चैतन्य) में था, और महाचक्र (विश्व) उत्पादक रहित, अजन्मा था, तब "दंगमा" कहाँ था?

टीका :—उत्पादक रहित = गढ़नेवाले (Builders) देवों से

अभी तक विश्व गढ़ा नहीं गया था। अव्यक्तचेतना में अहं न रहने के कारण अचेतन भी कह सकते हैं। हमारे लोककी प्रकृति में मन प्रगट होता है और मन (Mind) में ऊँचे लोक में आत्मा (Spirit) और तीनों के संयोग में जीवन (Life) प्रगट होता है।

यह विश्व की द्वितीय भूमिका या लोक का वर्णन है। विश्व में अभी तक देवों ने रचने का कार्य आरम्भ नहीं किया है। इस अवस्था का ज्ञान होने के लिए "दंगमा" या जीवन्मुक्त को बहुत ऊँची योग्यता होनी चाहिए।

इस प्रकार इस प्रथम खंड में प्रलय अवस्था में एक अद्वितीय का वर्णन हुआ। पर सब वर्णन नकारात्मक ही है। अभी व्यक्त होने का समय नहीं आया है। इस अवस्था का पूरा वर्णन हो नहीं सकता। अद्वितीय पद्य खंड में आगे की अवस्था का वर्णन होगा। परन्तु वह भी प्रायः प्रथम के समान ही है। मध्य रात्रि और गाढ़ सुषुप्ति बीत कर उषाकाल आता है। जगने की तैयारी होती है।

पद्य खंड २

पार्थक्य का विचार

१ श्लोक :—मान्वन्तरिक उदय के प्रकाशमय पुत्र (क) रचनेवाले देव (Builders) कहाँ थे ? अज्ञात अन्धकार में (परनिर्वाण) या केवल निर्गुण ब्रह्म (Absolute) में लय (परमानन्द में लीन) थे। अरूप से रूपसृष्टि रचनेवाली, संसार का मूल, देवों की माता, मूलप्रकृति (स्वाभावत) असत् (Non-Being) के आनन्द में लीन थी। (ख)

टीका :—(क) रचनेवाले = देवगणों की श्रेणियाँ जो सात लोकों की प्रकृति को, रूपों को और सात ग्रहमालाओं को रचते हैं।

मान्वन्तरिक उदय के प्रकाशमय पुत्र से विश्व के, सात ग्रह मालाओं के और यहाँ पर पृथ्वी के सात गोलों के अधिष्ठाता देवों का अर्थ है।

(ख) निर्गुण ब्रह्म की अवस्था में असत् (Non-Being = Absolute Being) का भान हो सकता है जब जीव अहं को लांघ कर ब्रह्म की पूर्ण चेतना में पहुँचता है।

देवों की माता से विश्व के अवकाश (Space) का अर्थ है।

२ श्लोक :—निश्शब्दता कहाँ थी ? उसे अनुभव करने को कान कहाँ थे ? नहीं। न निश्शब्दता थी, न शब्द था। (क)

नित्य अनन्त श्वास या गति (जो अपने को भी नहीं जानता) (ख) के सिवाय और कुछ नहीं था।

टीका :-(क) किसी वस्तु का अस्तित्व (Existence) और उसका सत् पना (Be- ness) इनमें भेद है। जैसे हाइड्रोजन और ऑक्सिजन मिलकर पानी बनते हैं। पानी में हाइड्रोजन लय अवस्था में है (It-is) पर अपने पूर्व रूप में नहीं है। अपने को जानने में संवेदना, विषय-ग्रहण, (Perception) और 'मैं' और 'तू' का भान आता है जो दोनों बन्धन-कारक है।

(ख) नित्य अनन्त श्वास से, ब्रह्म का अर्थ नहीं है। जिसमें ये बन्धन नहीं है। उसमें दृश्य, अदृश्य और दर्शन तीनों सम्मिलित हैं।

(ग) अपने को जानने से चेतनता आ जाती है।

३ श्लोक :—अभीतक ठीक समय नहीं हुआ था। किरण अभी तक मूलगर्भ में (क) चमकी न थी। मातृपद्म (ख) अभी तक फूला न था।

टीका (क) मूल गर्भ = जगत रूपी अंडा। नित्य अन्धकार की किरण निकलने पर चमकते प्रकाश की, जीवन (life) की किरण हो जाती है। उसने गर्भ विन्दु में (जगत रूपी अंडे में मूलप्रकृति में) प्रवेश नहीं किया था। (ख) कमल से जगत् का अर्थ है क्यों कि उसके बीज के भीतर छोटा सा कमल वृक्ष पत्ती सहित बीज रूप में तैयार रहता है। नित्य अन्धकार = परब्रह्म अव्यक्त में-वर्तुल में-प्रथम विन्दु दीख पड़ता है।

४ श्लोक :—उस एक किरण को प्रवेश करने देकर वहाँ से

तीन बनकर चार रूप में माया की गोद में गिरने के लिए उसका हृदय अभी तक खुला न था।

टीका—मूल प्रकृति अभी तक अपनी जगत् से पूर्व की लय दशा से बदली न थी। समय आने पर वह जीवन को—ईश्वर के विचार की शक्ति को धारण करने योग्य हो जाती है। उस में भेद होने लगता है और तीन (पिता, माता और पुत्र) चार बन जाते हैं। चौथा व्यक्त जीवन (manifested life) पूर्व के तीन से उत्पन्न होता है। पुत्र = विश्व, नीचे अर्थ में सारी मनुष्य जाति, भूत, वर्तमान, और भविष्य।

५ श्लोक :—प्रकाश के जाल से अभी तक सात (पुत्र) (क) उत्पन्न नहीं हुए थे। अकेला अंधकार ही पिता माता "स्वाभावत" था (ख) और स्वाभावत (मूलप्रकृति) अन्धकार में था।

टीका—(क) सात पुत्र = ब्रह्मा के सात पुत्र जो सात ग्रह-मालाओं के स्वामी हैं और सूर्य मंडल के रचने में भाग लेते हैं।

(ख) स्वाभावत् = विश्वव्याप्त मूलप्रकृति (Plastic Essence) जो विश्वभर में व्याप्त थी; सत का मूल।

६ श्लोक :—ये दोनों गर्भ विन्दु (germs) हैं और वह गर्भ विन्दु एक ही है (ईश्वरीय) दिव्य संकल्प और (ईश्वरीय) दिव्य हृदय में विश्व अभी तक छिपा हुआ था।

टीका—दिव्य संकल्प से कोई संकल्प करने वाले का अर्थ नहीं है। परब्रह्म की मूलप्रकृति में छाया पड़ना; 'ब्रह्म से ब्रह्मा'; जगत् रचना के आरंभ में विश्व (=पुत्र) दिव्य विचार

में छिपा पड़ा था। यह दिव्य विचार दिव्य हृदय तक अभी पहुँचा न था।

यह द्वितीय पद्य खण्ड समाप्त हुआ। इसकी और प्रथम पद्यखंड की अवस्थाओं में बहुत कम भेद हम लोगों को समझ पड़ता है। पर इन श्लोकों को अन्तःस्फूर्ति की सहायतासे पढ़ना चाहिये। भीतर ही भीतर भेद या तैयारी हो रही है। अब तीसरे पद्य खण्ड में प्रलय के पश्चात् विश्व के जगने का वर्णन होगा। शुद्धात्मा जीव (monads) ईश्वर में लय की अवस्थासे जगेंगे और जगतरचना की अति ऊँची अवस्था बताई जायगी।

पद्य-खंड ३

विश्व की जागृति

१ श्लोक:—सातवें अनन्त कल्प (प्रलय = ब्रह्मा की एक रात्रि) का अन्तिम स्फुरण (क) अनन्त अवकाश में कंपित होता है। माता (जगत् योनि) पद्मकलिका या अंकुर के समान भीतर से फूलकर बाहर निकलती है। (ख)

टीका :—(क) प्रथम लोगस (शिव) देशकाल से परे हैं। द्वितीय मूर्ति (Logos) विष्णु में समय का आरंभ हो गया। माता का फूलना = विभिन्नता का आरंभ होना। सातवें अनन्त कल्प के अन्तिम स्फुरण से जगत् के उदयकाल का अर्थ है। यहाँ शिव (First Logos) प्रगट होंगे। अभीतक काल (Time) नहीं है। आरंभ में देश (Space) और काल नहीं होता। प्रथम शिव (Unmanifested Logos) सप्तम कल्प के आरंभ में, और द्वितीय व्यक्त लोगस या विष्णु उसके अन्त में, प्रगट होते हैं। अनन्त, अनपेक्षित काल (Duration) आपेक्षिक समय से भिन्न है। आपेक्षिक समय और अवकाश विष्णु से आरंभ होते हैं। द्वितीय लोगस विष्णु में प्रथम लोगस शिव और तृतीय लोगस ब्रह्मा, दोनों के गुणों का समावेश है। अनंत समय (Duration) को यहाँ दो रूप में बताया है: अनंत समय, और विच्छिन्न सीमायुक्त समय। प्रथम मूलवस्तु है और दूसरा रूपमात्र है। (ख) फूलने का अर्थ अनंत अवस्तु का अनंतवस्तु होना है। स्थिति का बदलना है। ब्रह्मा

के एक दिन में १४ मनु और एक हजार चतुर्युग अर्थात् ४,३२,००,००,००० मानव-वर्ष होते हैं।

२ श्लोक :—यह स्फुरण अपनी तीव्र गति से फैलता हुआ अपने शीघ्र पंखों से (एक साथ ही) सकल विश्व को और अंधकार (ईश्वर) में स्थित गर्भविन्दु को छूता है। यह अंधकार (नारायण) जीवन के सोते पानी पर श्वास डालता (चलता) है २

टीका—यह श्लोक जगत् के व्यक्त होने के पूर्व की अवस्था प्रगट करता है। विश्व = अरूप अवकाश। गर्भविन्दु = होनहार प्रकृति, अनादि अणु। स्फुरण = अव्यक्त ईश्वर। ब्रह्मा और विष्णु की अपेक्षा से शिव को भी अंधकार कह सकते हैं। अंधकार को श्वास का जीवन के सोते पानी (ईश्वरयुक्त मूलप्रकृति) पर चलने से नारायण का अर्थ है; नार = पानी, अयण = चलना। यह जीवन का पानी हमारे लिए अवस्तु है; इसमें पुरुष प्रकृति दोनों लय अवस्था में हैं।

३ श्लोक:—अन्धकार से प्रकाश झरता है और प्रकाश से एक किरण पानी में माता रूपी गहराई में गिरती है। यह किरण शुद्ध, गर्भरहित अंडे (Virgin Egg=मूलप्रकृति) में प्रवेश करती है। इस किरण से वह अनन्त अंडा स्फुरणयुक्त (गर्भयुक्त) होता है और अनित्य (व्यक्त काल का) गर्भ विन्दु गिराता है, जो विन्दु जमकर विश्व अंड (World Egg) बन जाता है।

टीका:—एक किरण से सात किरणें और अन्त में कई किरणें बन जाती हैं, जैसे श्वेत प्रकाशसे सातरंग के प्रकाश हो जाते हैं। "एक किरण का माता रूपी गहराई में गिरना" इससे

ईश्वरीय विचार का प्रकृति को गर्भित करना तात्पर्य है। शुद्ध अंडा तो सदैव एक रूप अनन्त रहता है। अंडे में बीज पड़ जाने से उसमें पूर्ण व्यक्तित्व की संभावना होती है। इसी प्रकार विश्व रूपी अंडे का हाल है।

एक किरण = दैवी विचार। गर्भरहित अंडा = संभाव्य सत्ता। अनित्य = समय समय पर प्रगट होने वाला। विश्व अंड = सरूप अस्तित्व।

ये विश्व बनने के पूर्व की बातें हैं। यह ध्यान में रहे कि अणु से गोले तक और मनुष्य से देव (Angel) तक की व्यक्त वस्तुओं का आदि रूप गोलाकार होता है।

४ श्लोक:—(फिर) तीन (त्रिकोण) चार (चतुष्कोण) में गिरते हैं। प्रकाशमय दिव्य रस भीतर बाहर से सात सात प्रकार का हो जाता है। प्रकाशमान अंड (हिरण्य गर्भ) जो स्वयं तीन (रचनात्मक सत्ता की तीन अवस्थारूप) है, दधिरूपवत् माता (व्योम) की सब गहराइयों में दूध समान श्वेत दधिरूप में बिछ जाता है, (आकाश गंगा के श्वेत पट समान) जीवसागर को गहराई में उगने वाली वह जड़ है।

टीका:—जीव सागर = परमात्मा

दूध समान श्वेत दधिरूप = एक अर्थ में आकाश गंगा = मूल-प्रकृति अपने प्रथम रूपमें। आकाश गंगा में भी प्रकृति दधि सरीखी स्थिति में दीख पड़ती है, कहीं पतली कहीं जमी हुई। ये जमे हुए भाग भविष्य में जगत् बन जायँगे।

समुद्र मंथन की क्रिया "असत्" की अवस्था में आरंभ हो कर

यहां प्रलय के अन्त तक चलती है। चौदह रत्न उसी क्रिया के अंग हैं।

५ श्लोक:—मूल (सत्व, नित्य, सत्य, बुद्धि) बना रहता है। प्रकाश (दिव्य संकल्प) भी बना रहता है। दधि (विश्व बनने के लिए तैयार प्रकृति परमाणु) बना रहता है, तो भी ओ-ई-ओ-हु (देवों के माता पिता) एक ही वस्तु हैं।

टीका:—इस अवस्था में जो कुछ व्यक्त हो चुका है वह सब एक ही वस्तु का रूपान्तर है। प्रकृति की दधि के समान अवस्था से आकाशगंगा उत्पन्न होती हैं। वैसी आकाश की प्रकृति पृथ्वी पर नहीं है। एक अर्थ में पितामाता सब का मूलरहित मूल है। दूसरे अर्थ में वह एक व्यक्त जीवन है। मूल से शुद्ध ज्ञान, अनन्त, अविच्छिन्न सत्य का अर्थ है।

"प्रकाश" वही सर्व व्यापी आत्मिक किरण है जो अब अंडे में बीज दे चुकी है; जिससे विश्वप्रकृति अपना विभिन्न होने का कार्य करती है। "दधि" प्रथम भेद है। उससे आकाशगंगा की प्रकृति के आदि रूप का भी अर्थ है। यह प्रकृति प्रलय काल में अति ही सूक्ष्म होती है। विश्व के जगने पर अवकाश में फैलकर दधि समान गुच्छों में इकट्ठी हो जाती है। ये गुच्छे भविष्य जगतों के बीज हैं।

"ओ-ई-ओ-हु" ॐ सरीखा एक गूढ़ नाम है, इसका उच्चारण कई रीति से होता है। इससे निरपेक्ष ब्रह्मन् का और व्यक्त ईश्वर का अर्थ है।

६ श्लोक:—अमृतसागर की प्रत्येक बूँद में जीवन का मूल था और उस सागर में प्रकाशमय तेज था जो अग्नि, ताप, और गति था। अन्धकार (पुरुष) मिट गया और वह

न रहा । वह अपने ही सत्व में अग्नि और जल के, माता पिता के शरीर में लुप्त हो गया ।

अन्धकार का सार ही असल सत्य और निरपेक्ष प्रकाश है । अन्धकार के बिना प्रकाश प्रगट ही न हो सकता । हमारा प्रकाश वस्तु या प्रकृति (Matter) है ।

अन्धकार शुद्ध आत्मा है । अन्धकार असल आदि अर्थ में अवस्तु और अनपेक्ष प्रकाश है और साधारण प्रकाश भ्रान्ति है । प्रकाशकाल में विश्व, हम छोटे से, तथा विच्छिन्न, सीमित मनवालों को, अन्धकार रूप दिखता है ।

"अग्नि, ताप, गति" से हमारी पृथ्वी की इन वस्तुओं को न समझना चाहिये । यहाँ इन वस्तुओं के असल, रहस्यमय मूलतत्व का अर्थ है । अग्नि और जल या माता-पिता से यहाँ पर दैवी किरण और मूल-प्रकृति या भूतप्रलय अवस्था का, पुरुष-प्रकृति का अर्थ है । अग्नि बहुत दिव्य वस्तु है । ब्रह्म को भी अन्धकारमय अग्नि कहा है । सूर्य, विद्युत् चुम्बक-शक्तियों का समूहमात्र है । वह अपने जगत् से शक्ति खींचता है ; परन्तु वह अपने विश्व के जीव और श्वासधारियों में जीवन प्रवाह करता है । वह अपने विश्व का हृदय है ।

श्लोक ७—देख, हे लानु, (शिष्य) उन दोनों का तेजमय बालक, अद्वितीय प्रकाशमय दिव्यता, काले अवकाश (Space) का पुत्र प्रकाशमय अवकाश (Space) (क) जो महान् अंधकारमय जलों की गहराई से निकलता है । वह छोटा ओ-ई-ओ-हु, देवों का माता-पिता या....(व्यक्त या सूर्यमंडल का ईश्वर) है । वह सूर्य के समान

चमकता है । वह ज्ञान का देदीप्यमान या ज्वलंत दिव्य नाग (ईश्वर) है । (ख) एक अब चार है । चार तीन से विवाह करते हैं और इनके संयोग से सप्त उत्पन्न होते हैं । इनमें वे सात हैं जो तीस उत्पन्न करनेवाले ध्यानीसमूह बन जाते हैं । उसे परदा उठाते और पूर्व से पश्चिम तक उस परदे को खोलते हुए तू देख । वह ऊपरवाले को (अरूपसृष्टि को) ढाँक लेता है और नीचेवाले (रूपसृष्टि) को माया रूप में दिखने के लिए छोड़ देता है । वह चमकते हुए (तारों) के लिए स्थान नियत करता है । वह ऊपरवाले (व्योम) को अनंत अग्निमय सागर बनाता है (ग) और व्यक्त प्रकृति को महाजल (आकाश) में बदल डालता है । (घ)

टीका—परदा = सत्यता का परदा जिसके उठाने से माया का जगत् दिखने लगता है ।

(क) "काले अवकाश का पुत्र, प्रकाशमय अवकाश" = नये उषःकाल में किरण का विश्व की गहराई में गिरना, जिससे इस किरण का नये जीवन के रूप में या व्यक्त छोटे, ओ-ई-ओ-हु के रूप में प्रगट होना पूर्व में कह आये हैं । इस छोटे से ब्रह्मा के सात पुत्र हैं जो आगे प्रगट होंगे ।

(ख) "ज्ञान का दिव्य नाग" से (Logos) लोगस् का, एक शिव का, पूर्ण ज्ञान का, और पूर्णता का अर्थ है । शेष का नाम अनन्त है जो विष्णु का भी नाम है ।

(ग) "अनन्त सागर" = मूलप्रकृति से प्रथम स्रोत । उसका प्रथम रूपान्तर × × = लोगस् या ईश्वर । एक = ज्ञान का नाग ।

इस नये विश्व अर्थात् सब शक्यताओं के जीवित बिन्दु में

सात रचना करनेवाले देव वर्ग या किरण समाये हुए हैं। अब बहुत से परिवर्तन होते हैं।

(घ) मूलप्रकृति अब अपना दूसरा रूप धारण कर अग्नि का समुद्र बन जाती है और फिर वायु तत्व, फिर आगे जल तत्व रूप हो जाती है।

श्लोक ८—गर्भबिन्दु कहाँ था? और अब अन्धकार कहाँ था? (क) हे लानु, (शिष्य) तेरे द्वीप में प्रकाश देनेवाली ज्योति का आत्मा कहाँ था? वह बिन्दु, वह "तत्" है और "तत्" यही तेज है। गुप्त कालहंस पिता (ब्रह्म) का यह श्वेत देदीप्यमान पुत्र है।

टीका—(क) दूसरे प्रश्न के उत्तर से प्रथम प्रश्न का उत्तर भी मिल जाता है। तत्=जो था, है, और होगा; अज्ञात देव।

हमारी सकल इन्द्रियों को अदृश्य, अज्ञेय ऐसी वस्तुएँ हैं जो विशेष महत्व की, विशेष सत्य, और विशेष स्थायी हैं। प्रकाश अब स्वयं पिता बनकर शीत ज्योति माता के संयोग से अणु बनाकर चार विश्व-तत्वों के मूल आदिरूप बनाता है, ये विश्वव्याप्त ताप की सहायता से बनते हैं। इन्हें हाइड्रोजन, ऑक्सिजन, ओज़ोन, और हाइड्रोजन-ऑक्सिजन के आदिरूप के नाम दे सकते हैं।

९ श्लोक:—तेज यह शीत ज्योति है (क) और ज्योति यह अग्नि है; और अग्नि उष्णता उत्पन्न करती है, जिससे पानी बनता है। महामाता (व्योम अवकाश) में जीवन का पानी है।

टीकाः—तेज, ज्योति, ताप, शीत, अग्नि, पानी, और जीवन का पानी—ये सब हमारे लोक में विद्युत् के रूपान्तर हैं। यह विद्युत अति पवित्र संततिकी माता है। वह अग्नि को उत्पन्न करती है जो हमारे दिव्य पूर्वजों (पितृ देवों) का तत्व या सार है; वह ज्योति को उत्पन्न करती है जो मानो सब वस्तुओं का जीव है। यह विद्युत् आदि रूप में समष्टि प्राण है; जगत् का मानो जीव है। प्रकाश, अग्नि ज्योति, यहाँ विशेष अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम अनंत मूलप्रकृति न ठंडी है न गरम है; पर अपने खास रूप में है। ठंडा, गरम, ये व्यक्त दशा के शब्द हैं। मूलप्रकृति विश्वविद्युत् की शक्ति से क्रियावान् होने के पूर्व ठंडी, रंगहीन, रूप स्वाद रहित, निर्गुण एक वस्तु (छिपी हुई) है। उसके प्रथम चार पुत्र (आकाश, वायु, जल और अग्नि) जो एक हैं और सात हो जाते हैं, ये भी ऐसे ही हैं।

१० श्लोक:—माता पिता जाल बुनते हैं, जिसका ऊपर का छोर पुरुष (अन्धकार से निकले तेज) से बँधा है और जिसका नीचा छोर प्रकृति (अन्धकार के काले छोर) से बँधा है और यह जाल उन दोनों तत्वों से बनी एक वस्तु से—स्वाभावत से—बुना हुआ विश्व है।

टीकाः—माता पिता=ब्रह्म=अज्ञात अन्धकार का बीज स्वाभावत=विश्वव्याप्त मूलप्रकृति (देखो पद्य खंड २ का ५ श्लोक) ब्रह्म फैलकर विश्व बन जाते हैं जो उन्हीं के पदार्थ से बुना गया है। माता-पिता की वस्तु एक है पर कार्य भिन्न भिन्न हैं।

११ श्लोक :—जब अग्नि (पिता) का श्वास इस जाल के ऊपर गिरता है, तब यह फूलता है। जब माता (मूल प्रकृति) का श्वास इसे छूता है, तो यह संकोच को प्राप्त होता है; फिर पुत्र (सप्त महाभूत और उनके अधिष्ठाता देव) छूट कर बिखरते हैं और महाकल्प के अन्त में फिर अपनी माता के हृदय में लौट आते हैं और उससे एकत्व को प्राप्त होते हैं। ठण्डा होने पर वह जाल प्रकाशित हो जाता है। उसके पुत्र अपने अहं द्वारा और अपने हृदयों द्वारा फूलते हैं और संकोच को प्राप्त होते हैं। वे अनन्त व्योम में समा जाते हैं।

(टीका) :—जाल = मूलप्रकृति, जो हमारे लिए बहुत ऊँची और शुद्ध आत्मा सी ही है। बहुत ताप से प्रकृति के पदार्थ टूट कर एक आदि प्रकृति के रूप में हो जाते हैं। ताप के (अथवा शक्ति के केन्द्र) आकाश में बहुत से विचरते हैं। उनके आकर्षण के भीतर आने से जीवित तथा मृत पदार्थ अणुरूप होकर माता के गर्भ में रहता है। फिर फोहत अर्थात् ईश्वर की विवेक रचनात्मक शक्ति, सब शक्तियों की संचालक शक्ति, कुछ नेब्युलाओं को इकट्ठा कर, उनमें नई गति और नई उष्णता उत्पन्न कर, उन्हें अपना विकास करने के लिए छोड़ देती है। फोहत को विश्व-विद्युत् भी कहते हैं। उसमें बुद्धि भी है। अव्यक्त और व्यक्त के बीच फोहत एक पुल है। ईश्वर की विचारक्रिया की वह संचालक शक्ति है। सब व्यक्त होने की क्रियाओं को वह ठीक मार्ग से चलाती है। मन और जड़प्रकृति के बीच में वही सन्धि है। वह प्रत्येक अणु में विद्युत् भरकर उसे जीवन में परिवर्तित करती है। रूपक की भाषा में उसे ईश्वर का प्रेम कहते हैं। दैवी परमात्म-तत्व (Divine Spirit) और दैवी अन्तर आत्म-तत्व का मन (Divine Soul) इन्हें जोड़कर मनुष्य में उन्हें विशुद्ध-आत्मा (Monad) बनाता है। फोहत विश्व-विद्युत् का देव है। प्रकृति का नीचा जीव, जगदात्मा, (Animal Soul) है। गुरुत्वाकर्षण, प्रकाश, उष्णता, विद्युत्, चुम्बकत्व आदि उसी के रूप हैं।

श्लोक १२:—फिर स्वाभावत (मूलप्रकृति) अणुओं को स्थूल बनाने के लिए (उनमें शक्ति भरने को) फोहत (दैवी प्रकृति या आदिशक्ति) को आज्ञा करता है। प्रत्येक अणु उस जाल (विश्व) का एक भाग है। स्वयंभूके प्रतिबिंबको अपने में दर्पणके समान प्रतिबिंबित कर, प्रत्येक अणु समय पाकर एक विश्व बन जाता है।

टीका :—फोहत अणुओं में शक्ति भर कर उन्हें कड़ा बनाता है और फिर मूल-प्रकृति के अणुओं को तितर-बितर कर देता है। प्रकृति को अणुओं में बिखेरने से वह स्वयं अपने को भी बिखेरता है।

जैसे एक दीपक से, उसकी ज्योति घटे बिना भी अनन्त दीपक जल सकते हैं, वैसे ही एक स्वयंभू की अग्नि में से अनन्त ज्योतियाँ निकल सकती हैं।

पद्य खंड ४

सप्तदेव परंपराएँ

इसमें विश्व बिन्दु से सात दैवी शक्तियों के संघ निकलते हैं जो एक ईश्वर के व्यक्त रूप हैं। वे सब व्यक्त जगत् के रचने गढ़ने वाले हैं। वे उसके विकास को ठीक मार्ग से ले जाते हैं। वे बुद्धियुक्त हैं और विकास का संयम करते है। वे स्वयं एक सत्ता, एक नियम, प्रकृति के नियमों के रूप हैं।

श्लोक १—हे पृथ्वी के पुत्रो। अपने शिक्षकों, अग्नि पुत्रों, की बात सुनो। न तो प्रथम है न अन्तिम है, क्योंकि सब असंख्य (शून्य) में से निकली हुई एक संख्या है।

टीका :—अग्निपुत्रः भगवद्गीता अध्याय ८ में श्रीकृष्ण अग्नि ज्योति, दिन, शुक्ल, धुआँ, रात्रि, चन्द्र का वर्णन करते हैं। ये विशेष-विशेष देवताओं के नाम हैं जो विश्व की शक्तियों के अधिष्ठाता देव हैं। चन्द्र-पितृ हमारा स्थूल शरीर, प्राणमय कोषादि बनाते हैं और अग्निष्वात्त सात कुमार ये सूर्यके देव हैं, जो हमारा भीतरी मनुष्य बनाते हैं। उन्हें अग्नि-पुत्र इसीलिए कहते हैं कि आदि अग्नि (महत्) से ये प्रथम निकले। अग्नि से ज्ञान का भी अर्थ है, "ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि०"[भगवद्गीता] पाँचवीं मूलजाति के संबंध में अग्निपुत्र से ज्ञानी राजर्षियों का अर्थ है जो मनुष्य जाति को सिखाने को आये थे। (अग्निपुत्र, ग्रह चोहानों में सर्वश्रेष्ठ) Sons of Firemist, the

highest of the Planetary Chohans or Angels कभी कभी पुराने Hierophants को भी कहते थे) सब शून्य से निकली १ संख्या। शून्य = परब्रह्म (non-being); १ = व्यक्तविश्व (= being) अग्निष्वात्त पितृ मनुष्य में मन बनाते हैं—उत्पन्न करते हैं, यही अग्नि है। इस श्लोक में पृथ्वीपुत्र और अग्निपुत्र का वर्णन आने से बहुत पीछे की अवस्था की सूचना है, पर छोटी और बड़ी रचनाओं में एक ही क्रम रहने से बड़ी रचना का हाल भी छोटी रचना के क्रम से समझ में आ सकता है।

श्लोक २—हम जो आदि सात (Primordial Seven ध्यान चोहानों) की संतान हैं; हम जो आदि ज्योति से उत्पन्न हुए हैं—ऐसे हमने जो अपने पिताओं के पास से सीखा है उसे तुम भी सीख लो।

आदि सात = प्रकृति के पूर्व के सब से ऊँचे—ब्रह्मा के पुत्र ये सृष्टि रचने से इन्कार करते हैं। आदि सात (Primordial Seven) = अंधकार से निकली किरण। हम = सब से ऊँचे जीव।

श्लोक ३:—सुवर्णमय प्रकाशमें से—नित्य अंधकारकी किरणसे—जागृत हुई शक्तियाँ (ध्यान चोहान) अवकाश (Space) में उठ खड़ी हुई। अंड में से एक, छः, और पाँच (क) फिर तीन, एक, चार, एक, पाँच—कुल दुगुने सात (ख) और ये ही वे रस, ज्योतियाँ, तत्व, गढ़नेवाले (शिल्पी), संख्या, अरूप, रूपवान, और शक्तियाँ, दिव्य पुरुषकी शक्ति, यह कुल समुदाय है। दिव्य पुरुष में से रूप, चिन्गारियाँ, पवित्र प्राण या पशु और पवित्र चार के भीतर के पवित्र पितृओंके दूत, ये सब प्रगट हुए। (ग)

टीकाः—नाना वर्ग के देवों की उत्पत्ति का यह वर्णन है। जगत की रचना ही संख्या के आधार पर है। उन संख्याओं का-देववर्गों की गिन्तियों का यहाँ पूरा वर्णन नहीं हो सकता। ३ और ४ श्लोकों में नाना आध्यात्मिक शक्तियों के उत्पन्न होने का क्रम बताया है

(क) "अण्ड में से एक छः और पाँच" १०६५ संख्या हुई, । अंड = शून्य । १० + ६ + ५ = २१ या ३ × ७। महाभारत में २१ प्रजापति कहे हैं।

(ख) ३ + १ + ४ + १ + ५ = १४ या २ × ७ व्यास और परिधि का संबंध १:३·१४१५ से प्रगट होता है। गणित में इसे π या २२/७ से भी सूचित करते हैं।

(ग) गुप्त ज्ञान में रूप, चिन्गारी इत्यादि नाम दिये हैं। उन्हीं को पुराणों में देव, पितृ, ऋषि, सुर, असुर, दैत्य, दानव, गंधर्वादि नाम दिये हैं। पवित्रपशु से राशिचक्र में आये मेष, वृषभ, कर्क, सिंहादि को समझना; इनसे भी देववर्गों का अर्थ है। जगत् गणित के आधार पर बना है। इन देवश्रेणियों के नाम हमारी समझ में न आ सकेंगे।

श्लो० ४—यह वाच् का सैन्य—दैवी सप्तक था वाच्सप्त की दिव्य माता थी (क)। इन सप्त की चिन्गारियाँ सप्त के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम के बश में हैं और उन सबकी सेविकाएं हैं। इन (चिन्गारियों) को गोले (Spheres) त्रिकोण घन (cubes) रेखाएँ और आकार बनानेवाली (modellers) कहते हैं। क्योंकि इस प्रकार अनंत निदान या अस्तित्व का कारण, देवों का पिता,

ओ-ई-हा-हू (Oi-Ha-Hou) स्थित है।

टीका :—इस श्लोक में देवताओं के भेद संक्षेप से कहे हैं। मनुष्यों के भी उतने ही प्रकार होंगे क्योंकि मनुष्य उन्हीं का स्थूल रूप है।

(क) वाच का सैन्य—इसका संबंध शब्द और वाक् से, ईश्वरीय विचार के परिणाम से है। नाम और शब्द आरोग्य दायक या जहरीले होते हैं। स्वरों में बहुत शक्ति होती है। वाच् के सैन्य से प्रकृति की रचनेवाली शक्तियों के समूह का अर्थ है। मनुष्य को सात चेतना की अवस्थाएँ और सात ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं।

(ख) विश्व प्रकृति बिखर कर पाँच तत्व बनाती है, चार तत्व पाँचवें आकाश (Ether) तत्व के भीतर। प्रकृति की रचना में रेखा गणित का उपयोग होता है।

अव्यक्त में अक्षय गति रहती है और व्यक्त में आदि अंत वाली। ज्वाला जब मूलप्रकृति में उतरती है, तब उस प्रकृति के परमाणु चलने लगते हैं और यह गति चक्रवात (whirl wind), वायु-भँवर या भौंरे की गति बनजाती है।

श्लो० ४—(क्योंकि अनादि कारणकी स्थिति इस प्रकार है) अर्थात्

श्लो० ५—ओ-ई-हा-हू जो अंधकार है, अनंत, असंख्या या संख्या से परे है आदि निदान स्वाभावत, शून्य ० है (फिर उससे)

१ आदि (क) सनत या संख्या क्योंकि वह एक है

२ शब्द का नाद, स्वाभावत, संख्याएँ क्योंकि वह एक और नौ है (ख)।

३ अरूप सम चतुष्कोण

और ० (अनंतवर्तुल) में समाये हुए ये तीन (ग) वे पवित्र चार हैं ; और दस ये अरूप विश्व हैं, फिर पुत्र, सात योद्धा, एक आठवाँ अलग छोड़ दिया जाता है, और उसकी श्वास जो तेज या प्रकाश बनानेवाली है।

टीका :—(क) 'आदि सनत' ब्रह्मा का नाम है। स्वाभावत, यह माता-पिता (व्योम) में व्याप्त प्रकृति है। (ख) एक और नौ अर्थात् दस प्रजापति परंपरा या समूहोंकी संख्या दर्शाता है। शून्य अनंत वर्तुल है। सात योद्धा सात ग्रह हैं। आठवाँ हमारा सूर्य, अदितिका पुत्र आदित्य है। कथा है कि अदिति देवमाता सात पुत्रों को लेकर और आठवें सूर्य को छोड़कर देवताओं के पास गई। ये सात आदित्य हमारे सात ग्रह हैं। सूर्य ग्रह नहीं है, प्रकाश देनेवाली मध्यस्थ शक्ति है। गुप्तज्ञान में सूर्य ग्रहों का भाई है, पिता नहीं है। ज्योतिष शास्त्र उसे पिता समझता है। गुप्तज्ञान के अनुसार केन्द्रस्थ घूमती हुई प्रकृति के गोले से हमारा सूर्य प्रथम अलग हुआ और उसके पीछे बाकी प्रकृति से एक एक अलग होकर सात ग्रह हुए इसलिए सात ग्रह सूर्य के भाई हैं। उससे निकले नहीं हैं।

श्लोक ६—फिर दूसरे सात जो लिपिक कहलाते हैं तीन (शब्द, नाद और आदिवस्तु =Spirit) से उत्पन्न हुए हैं। त्यक्त पुत्र एक है, पुत्र-सूर्य अनगिन्ती हैं।

टीका :—लिपिक=लिखनेवाला, ये कर्म को भुगतानेवाले तथा कर्म नियम की व्यवस्था करनेवाले देवता हैं। मनुष्य के संचित कर्म में से कौनसा प्रारब्ध बने, इसका निर्णय ये करते हैं, पर उसमें मनुष्यके कल्याण का ध्यान सदैव रखते हैं। लिपिक महत् से उत्पन्न हैं। चार दिग्पाल भी ये ही हैं। ये महापरानिर्वाण लोक में रहते हैं। शब्द, नाद और आदि वस्तु (Spirit) में आपस में वही संबंध है जो मनस, बुद्धि और आत्मा में आपस में है। आदिवस्तु (Spirit) की उत्पत्ति अंधकार (Darkness) से है, जहाँ किसी की पहुँच नहीं हो सकती। आदिवस्तु अपनी छाया भविष्यजगत् की अविभक्त प्रकृति में डालती है जिससे उस आदि प्रकृति में विभाजन क्रिया का आरंभ होता है। यह नाद अर्थात् शब्द का पूर्वज हुआ। बस नाद से शब्द (Logos) उत्पन्न हुआ अर्थात् जो वस्तु अभी तक अव्यक्त अदृश्य विचार में गूढ़ थी वह अब मूर्तरूप से प्रगट हुई। जो व्योम (Space) में अपनी छाया डालता है वह तृतीय मूर्ति अथवा ब्रह्मा (Third Logos) है। चित्रगुप्त लिपिक ही हैं और हर मनुष्य का प्रत्येक विचार और कार्य ऊँचे लोकों (Astral Light) की प्रकृति में स्थायी रूप से अंकित हो जाता है।

पद्य खंड ५

सप्तांगी देव-परंपराओं का बालक फोहत

श्लोक १—मूल सात, ज्ञानमय अजगर की प्रथम सात श्वासें, अपनी पारी में अपनी पवित्र गोल चक्रवत् फिरती श्वासोंसे ज्वलंत बगूला (Fiery Whirlwind) उत्पन्न करती हैं।

टीका:—ब्रह्मा के सात मानस पुत्र, महर्षिगण, शिल्पी देवगण, ये सब पूर्व मन्वन्तरों में, दूसरी सृष्टियों में, किसी भी आकार के मनुष्य थे। यह आवश्यक नहीं है कि उनका रूप अभी के मनुष्यों का सा ही रहा हो। तब उन में भी मन अभी का सा ऊँची नीची वृत्ति वाला रहा होगा। सब ऊँचे देवों को भी मनुष्य वर्ग में से, कहीं और किसी मनवन्तर में, विकास करना पड़ता है।

ज्वलंत चक्रवात से विश्व की ज्वलन्त धूलि (Cosmic dust) समझना चाहिये। या उससे भी अधिक, क्योंकि प्रत्येक परमाणु में स्व-संवेदना अर्थात् अहं चेतना उत्पन्न होने की संभावना रहती है। एक परमाणु भी अपने लिए एक छोटा सा विश्व है। वह परमाणु भी है और देव (angel) भी है।

यह विश्वधूल शिल्पी देवताओं के विचार के अनुसार खिंचकर इधर उधर दौड़ती है, जैसे चुम्बक से खिंचकर लोह चूर्ण भी दौड़ता है।

श्लोक २—वे उसे (चक्रवात को) अपनी इच्छा का दूत बनाते हैं। (क) ज्यू (ज्ञानपुंज) फोहत (ज्वलंत बगूला) बनता है, (ख) यह तीव्र गति वाला पुत्र, जिनके पुत्र लिपिक हैं उन दिव्य पुत्रों की आज्ञानुसार, गोलाई में कार्य करता फिरता है। फोहत घोड़ा है और विचार उसका सवार है (अर्थात् वह उनके संकल्पानुसार कार्य करता है)। बिजली के समान वह अग्निमय बादलों में से (विश्व की धूल में से) जाता है (अर्थात् आदि शक्ति देवताओं के संकल्पानुसार प्रवेश करती है)। वह ऊपर के सात और नीचे के सात लोकों (होनहार लोकों) में तीन, पाँच और सात कदम भरता है। (ग) वह चिल्ला कर असंख्य चिन्गारियों को बुला कर उन्हें इकट्ठा जोड़ देता है।

टीका:—(क) ब्रह्मा के सात मानस पुत्र ज्वलंत चक्रवात या फोहतशक्ति को अपनी इच्छा का वाहन बनाते हैं। ज्ञान पुंज जीवन बन जाता है। ध्यानी बुद्धों का—मनुष्य के ज्ञान दाता बुद्धों का ज्ञान समूह जीवन (Life) बन जाता है।

(ख) नारायण से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। ये ही महत् (Universal mind) अर्थात् सब ऊँचे रचने वाले देवताओं के गण समूह के समष्टि रूप हैं। महत् के प्रगट होने पर छिपा ज्ञान भी प्रगट होता है। उस ज्ञान की क्रिया से महत् की छाया फोहत बनती है। फोहत् मूलप्रकृति के या आकाश के सात तत्वों में क्रिया कर शक्ति के नाना केन्द्र बनाकर विश्व विकास की क्रिया का आरंभ करता है; उससे सूर्यमंडल के सब जीव बनते हैं।

इस प्रकार फोहत को प्राणदायक विद्युत् देवता, सब विश्व शक्तियों का संयोजक देवता जो दृश्य अदृश्य लोकों में काम करता है, कह सकते हैं। यह विष्णु की शक्ति और प्रेम है। इस का कार्य ग्रहों से लगाकर जुगनू तक या छोटे पौधे तक बनाने का है। फोहत को देवताओं का रूपधारी विचार कह सकते हैं। फोहत प्रगट और सुषुप्त रचनात्मक शक्ति, विश्वगति शक्ति, विश्वव्याप्त विद्युत् है।

ध्यानी बुद्ध सात हैं, पर अभी तक केवल पाँच, प्रत्येक मूलजाति के लिए एक-एक प्रगट हुए हैं। छठवीं सातवीं के ध्यानी बुद्ध आगे आने वाले हैं। इनकी प्रेरणा से पृथ्वी का बुद्ध अपने उत्तराधिकारी को दीक्षा देकर स्थापित करता है।

(ग) तीन और सात कदम से आत्मा का प्रकृति के सात लोकों में उतरने का अर्थ है। प्रथम ईश्वर (लोगस) किरण रूप से विशुद्ध आत्मतत्व में और फिर अन्तर आत्मा या मनस में और फिर स्थूल मनुष्य रूप में उतरता है। इस प्रकार वह जीवन (Life) बन जाता है।

श्लोक ३—वह उन (चिन्गारियों या अणुओं) का मार्ग-दर्शक देवता और उनका नेता है। जब वह काम का आरंभ करता है तब वह नीचे की वर्ग की चिन्गारियों (खनिज परमाणुओं) को जो अपने प्रकाशमय स्थानों (वायुरूपी बादलों) में तैरती हैं और आनंद से धड़कती हैं—इन चिन्गारियों को अलग कर उनसे चक्रों के बीज या केन्द्र (germs) बनाता है। वह उन्हें छः दिशाओं में स्थापित करता है और एक को—मध्य चक्र को—बीच में रखता है।

टीका :—चक्र ये शक्तियों के केन्द्र हैं जहाँ प्रकृति का संग्रह होकर अंत में गोले बन जाते हैं। जागृत गति की बढ़ती हुई चक्राकार प्रवृत्ति रहती है। छः दिशाओं से ऊपर, नीचे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण या श्रीचक्र के ऊपर और नीचे शिरावाले दो त्रिकोणों का अर्थ है।

श्लोक ४—छठवें को सातवें से—मुकुट से जोड़ने के लिए फोहत गोल पेंच आकार की रेखाएँ (क) बनाता है। प्रत्येक कोने पर (ख) प्रकाश के पुत्रोंकी एक-एक सेना खड़ी रहती है और लिपिक देवता बीच में रहते हैं। वे लिपिक देवता कहते हैं, "यह ठीक है!" प्रथम आध्यात्मिक लोक (ग) तैयार है। प्रथम (अब है) द्वितीय लोक (घ)। फिर आध्यात्मिक अरूप (संकल्प सृष्टि) छायालोक में—अनुपादक के प्रथम वस्त्र में अपनी छाया डालता है।

टीका :—(क) पेंच आकार की रेखाओं से प्रकृति के और मनुष्य के तत्वों का धीरे धीरे क्रमानुसार विकास होना, यह अर्थ है। ईश्वरीय प्रेम का फोहत शुद्ध आत्मा को महापरानिर्वाण या सप्तम लोक से धीरे धीरे उतारकर छठवें या परानिर्वाण के तत्व से मिलाकर मनुष्य में विशुद्धात्मा (Monad) बनाता है। प्रकृति में इस अव्यक्त अपरिच्छिन्न का व्यक्त से प्रथम संबंध है—

(ख) "प्रत्येक कोने की सेना" से उन देवगणों का अर्थ है जो कल्प के आरंभ से अंत तक प्रत्येक स्थान में विकास की निगरानी करते हैं।

(ग) "प्रथम अब द्वितीय है"। प्रथम अव्यक्त के देश में है, इसलिए उसकी संख्या नहीं हो सकती। "प्रथम" सत्य के

लोक की देहली है जिस लोक से ब्रह्म की शक्ति हमारे पास आती है। यह सत्य का लोक अनंत के हृदय से जैसे एक तारा गिरा हो ऐसा है। यह सात रंग का है अर्थात् इसकी सात किरणें हैं जिनसे सात लोक लटकते हैं। इसके पश्चात् आध्यात्मिक सृष्टि का लोक, एक आदि प्रकाश से जले अनंत प्रकाश।

एक गुप्त प्रश्नोत्तर में गुरुदेव शिष्य से पूछते हैं:—

"हे शिष्य अपना सिर उठाकर देख। तुझे अपने ऊपर अंधेरी मध्य रात्रि में जलता एक प्रकाश दिखता है या अनगिनती प्रकाश दिखते हैं"

"हे गुरुदेव मैं एक ज्योति देखता हूँ। उस में चमकती पर अलग न हुईं अनगिनती चिन्गारियाँ दिखती हैं"

"तू ठीक कहता है। अब अपने आस-पास और अपने भीतर देख। जो प्रकाश तेरे भीतर जल रहा है, क्या वह तेरे मनुष्य भाइयों के भीतर के प्रकाश से किसी भाँति तुझे भिन्न जान पड़ता है?"

"वह किसी भाँति भिन्न नहीं है, यद्यपि कैदी (अन्तरात्मा = कारण शरीरस्थ जीवात्मा) कर्म के बन्धन में कैद है और उसके बाहरी कपड़ों (कोषों) के कारण अज्ञानी लोग मायाभ्रम में पड़ कर 'तेरी आत्मा और मेरी आत्मा' कहते हैं।"

गुप्त ज्ञान में सब जड़ और चैतन्य वस्तुएँ—तारे से लगाकर खनिज का परमाणु, और ऊँचे देव से लगाकर कीटाणु तक, सब अंत में एक ही तत्व हैं।

श्लो०-५—फोहत पाँच कदम और चलता है (तीन कदम (क) प्रथम चल चुकने के उपरान्त) और चार पवित्र देवताओं के और उनकी सेनाओं के लिए(ख)समचतुष्कोण के चार कोनों पर चार पंखदार चक्र बनाता है।

टीका:—(क) कदम से विश्व के और मनुष्य के तत्वों का अर्थ है। विश्व के हिसाब से पाँच कदमों का अर्थ चेतना के पाँच ऊँचे लोकों का हुआ। छठवें और सातवें भुवर और भूलोक हुए।

(ख) "चार कोनों पर चार चक्र" चार पवित्र देवताओं से चार महाराजा या चार दिग्पाल का अर्थ है। ये एक-एक दिशाओं में कार्य करने वाली शक्तियों के अधिपति हैं। ये दिक्-पाल कर्म के भी देवता हैं और जिन शक्तियों से मनुष्य को हानि-लाभ पहुँचता है, उनके भी स्वामी हैं, जैसे वायु शक्तियों के, पाँच कदम = मनुष्य और विश्व संबंधी, सातवें और छठवें के नीचे के पाँच तत्व। तीन कदम से आत्मा का माया में उतर कर विशुद्ध-आत्मा, जीवात्मा और देहाभिमानी जीव बनाना है।

श्लो०-६—लिपिक देवता प्रथम वाले त्रिकोण को दूसरे वाले छः पहलू घन (Cube) को, अंडाकार (या वर्तुल) के भीतर पंचकोण को रखते हैं। जो चढ़ते-उतरते हैं उनके लिए और जो कल्प में 'हमारे साथ हो जाओ' (प्रलय) (ख) इस बड़े दिन की ओर शुद्धता का विकास कर रहे हैं उनके लिए, यह अलंघनीय वर्तुल है, जिसके परे जाना या बाहर निकलना सम्भव नहीं है (Ring Pass not) (क)। इस प्रकार अरूप और रूप लोक बने। एक तेज में से सात तेज। इन सात में के प्रत्येक से सात गुने सात प्रकाश प्रगट हुए। (ग) ये चक्र

इस वर्तुल को ताकते रहते हैं।

टीका—(क) इस श्लोक में देवगण के बारीक विभाग और अन्तर्विभाग बताये हैं। इसका अर्थ यह है कि कर्म के देवता कारणशरीरस्थ जीवात्मा (Ego) और हमारे विशुद्धात्मा (Monad) के बीच में एक अलंघनीय बाधा डाल देते हैं। इसी प्रकार सारा सूर्यमंडल हमारे ईश्वर के तेजस् (aura) की हद है और उस मंडल में विकास करनेवाले सब जीव उस हद के बाहर अपनी चेतना नहीं पहुँचा सकते। गुप्तज्ञान में "एक" दो हैं; एक अज्ञेय, अव्यक्त, अनादि, अनन्त ब्रह्म और दूसरा, एक, जो व्यक्त होता है, (लोगस)।

(ख) चढ़ने उतरनेवाले = जन्म लेनेवाले जीवात्मा जो शुद्धता की ओर विकास करते हुए अंत में ब्रह्म से एकत्व को प्राप्त होते हैं। (Be-with-us) फिर ये प्रलय के अंत तक (३११०४ × १०^{१०} वर्ष पर्यंत) ब्रह्म में लीन रहेंगे।

(ग) अग्नि एक ज्योति (One Flame) का बहुत पूर्ण और बहुत शुद्ध प्रतिबिम्ब है। त्रिकोण प्रथम एक वन, दूसरा एक पंचकोण = ३१४१५, उतरने चढ़नेवाले = जन्म लेनेवाले जीवात्मा चक्र = चक्राधिपति। वर्तुल = गोला, परिक्रमाकाल, ग्रहमाला।

इस प्रकार पंचम पद्यखंड में जगत की रचना का वर्णन है। प्रथम फैली हुई विश्वप्रकृति, फिर ज्वलंत चक्रवात, या भँवर या फोहत, नेब्युला की आरंभ की दशा, फिर नेब्युला कुछ ठंडा होकर जम चलता है और नाना रूपान्तरों के पश्चात् सूर्यमंडल का, ग्रहमाला का, एक ग्रह का, जैसा प्रसंग हो, रूप धारण करता है। इससे आगे का विकास छठवें पद्यखंड में लिखा है और वह हमारे समय तक का वर्णन करता है।

पद्य खंड ६

हमारा जगत्, उसकी वृद्धि और विकास

श्लोक १—दया और ज्ञान की माता की (Kwan-yin) शक्ति से जो ईश्वर की तीन संबंध (माँ, स्त्री और लड़की) वाली है और जो दैवी वाक् के स्वर्ग में रहती है, फोहत जो उसकी संतति की श्वास है, जो पुत्रों का पुत्र है, नीचे लोकों से हमारी सृष्टि के मायामय रूप और सात तत्वों को बाहर प्रगट कर के,

टीका—दया और ज्ञान की माता = मूलप्रकृति ; दैवीवाक् या सरस्वती, ब्रह्मा (Third Logos) की स्त्री, ईश्वर की रचनात्मक शक्ति ; इनकी संतति = तीन संबंधों की।

यह पद्यखंड चीनी भाषा में है।

श्लोक-२—शीघ्र गतिवाला और तेजस्वी फोहत सात लय-बिन्दु उत्पन्न करता है, जिनके सामने "हमारे साथ होने" के दिन तक और कोई टिक न सकेगा। यह विश्वको अनंत काल तक टिकने वाली नींव पर स्थापित करता है, और उसके आस-पास मूलबिन्दु या जीवबीज (Germs) स्थापित कर देता है।

टीका—मूलबिन्दु = परमाणु, मनुष्य में परमात्मा(Monads); 'लयबिन्दु' से प्रकृति में विकार, भेद होना आरंभ होता है और तत्त्व बनने लगते हैं। प्रत्येक लोक में फोहत का कार्य होता है।

अपने कार्य में वह सर्वत्र उपस्थित है। प्रकाश, ताप, शब्द, आकर्षण, विद्युत् अर्थात् विश्व की जीवनशक्ति, यही फोहत है।

श्लो०-३—सात (तत्वों) में से—प्रथम एक प्रगट हुआ छः गुप्त रहे; दो प्रगट हुए, पाँच गुप्त रहे; तीन प्रगट हुए, चार गुप्त रहे; चार प्रगट हुए, तीन गुप्त रहे; चार और एक भाग प्रगट हुए, अढ़ाई छिपे रहे; छः प्रगट होने को हैं और एक अलग रख देने को है ; अन्त में सात घूमते छोटे चक्र; एक में से दूसरा उत्पन्न होने लगा।

टीका :—यह श्लोक विश्वरचना के सम्बन्ध का है, पर समानता के नियम से, यह पृथ्वी के सात तत्वों की रचनाक्रम को भी बताता है। चार तत्व अभी प्रगट हो चुके हैं, पर पाँचवाँ आकाश (ether) अभी नाम मात्र को ही प्रगट हुआ है। वह पंचम परिक्रमा काल में पूरा प्रगट होगा। सब गोले (worlds) प्रथम एक तत्व से (माता-पिता = महत तत्व से), उसके दूसरे विकसित रूप में, बीज रूप से प्रगट हुए थे

सात चक्र हमारी ग्रहमाला के सात गोले हैं

श्लो०-४ वह उन्हें पुराने चक्रों के (ग्रहों के) समान बनाता है (क) और अविनाशी केन्द्रों में (ख) स्थापित करता है।

फोहत उन्हें कैसे बनाता है (ग)। वह ज्वलंत धूलको इकट्ठी करता है। वह अग्निके गोलों को बनाता है और उनके भीतर और आसपास दौड़कर उनमें जीवन (Life) संचार करता है; फिर उनमें गति प्रदान करता है। कुछ की गति इस ओर और कुछ की उस ओर। वे ठंडे हैं ; वह उन्हें उष्ण कर

देता है। वे सूखे हैं, वह उन्हें गीले कर देता है। वे ताप से प्रकाशमान हैं, वह उन्हें हवा करके ठंडा करता है।

इस प्रकार फोहत एक संध्या से दूसरी तक, सात कल्प पर्यन्त, क्रिया करता रहता है।

टीका :—(क) कल्प के अंतमें पुराने ग्रहों के मरने पर उनकी प्रकृतियों से नये ग्रह बनते हैं।

(ख) अविनाशी लयकेन्द्र—यदि प्रकृति के दो उत्तरोत्तर खण्डों (planes) का ध्यान करें तो इन दो खंडों में प्रकृति का निरन्तर प्रवाह होता रहता है। नीचे के खंड की प्रकृति का अणु ऊपर के खंड में चढ़ते समय नीचे के खंड की दृष्टि को अदृश्य हो जाता है और ऊपर के खंड में प्रवेश करता है।

(ग) फोहत विश्व विद्युत् भी कहलाता है। उसके सात पुत्र या सात निचले रूप हैं, जिन में हमारी विद्युत् या बिजली और चुंबकशक्ति शामिल हैं। प्रकाश, ताप, गति, आकर्षण, ये भी उसी के रूप हैं। फोहत के द्वारा एक गोले के तत्व दूसरे गोले में, एक तारे के दूसरे बनते हुए छोटे तारे में, जाते हैं।

अभी तक ये श्लोक विश्वप्रलय पश्चात् विश्वरचना का वर्णन करते थे। इस श्लोक से लगाकर अब आगे हमारे सौर जगत् का तथा उसके भीतर की ग्रहमालाओं का और विशेषकर हमारी पृथ्वी और उसकी माला का वर्णन करेंगे। ये आगे के श्लोक पृथ्वी के विकास का वर्णन करते हैं। इन पिछले और आगे के श्लोकों में वर्णित स्थितियों में कई महायुगों का अंतर है।

श्लोक ५—चौथे (परिक्रमा काल) में पुत्रों को अपनी

छाया (images) रचनेको कहा जाता है। एक तृतीयांश इन्कार करते हैं। दो तृतीयांश आज्ञा का पालन करते हैं। शाप दे दिया गया है। उन्हें चौथी (मूलजाति) में जन्म लेना पड़ेगा। उन्हें दुःख भोगना पड़ेगा और वे दूसरों को दुःख भोगावेंगे। यह प्रथम लड़ाई है।

टीका—इसका व्यौरा आगे मनुष्यरचना में पूरा मिलेगा। चौथे से चौथे मन्वन्तर का और चौथे गोले का अर्थ भी हो सकता है। एक भाष्य में लिखा है, "शुद्ध ब्रह्मचारी कुमारों (देवताओं) ने अपने समान संतान बनाने से इन्कार किया। (उन्होंने कहा) ये रूप हमारे योग्य नहीं हैं, इनको अभी सुधरना चाहिये। इस प्रकार उन्होंने अपने से छोटों की छायाओं में प्रवेश करने से इन्कार किया। ऐसे आरंभ से ही देवों में भी स्वार्थपरता आ गई और उन पर कर्माधिकारी लिपिक देवों की दृष्टि पड़ी"। उन्हें उसका फल आगे जाकर भुगतना पड़ा। यह रचना इच्छाशक्ति की क्रिया से होनेवाली थी। अभी तक स्त्री पुरुष अलग अलग नहीं बने थे।

पृथ्वी का और बाहर का प्रत्येक परमाणु भी विकास द्वारा मनुष्यपद को प्राप्त होने की इच्छा करता है। शाप कोई दे नहीं देता। परंतु कारण उत्पन्न हो जाने से उसका विपाक या फल अवश्य होगा।

प्रथम लड़ाई का अर्थ यह है कि विकास की क्रिया में समय समय पर आध्यात्मिक या प्राकृतिक या ज्योतिष संबंधी संघर्षण होकर योग्य व्यवस्था उत्पन्न होती है। प्रथम लड़ाई सूर्यमंडल बनने के पूर्व हुई। दूसरी पृथ्वी पर मनुष्य बनते

समय, तीसरी चौथी मूलजाति में श्वेतद्वीप के ऋषियों और एटलांटिस के तांत्रिकों के बीच में हुई।

श्लोक ६—पुराने चक्र घूमते नीचे ऊपर जाते हैं······ माँ के अंडजों से सकल विश्व (सूर्य मंडल) भर गया। उत्पन्न करनेवाले और संहार करनेवालों में संग्राम हुए और स्थान के लिए युद्ध हुए। बीज नित्य दीख पड़ता था और लोप हो कर फिर दीख पड़ता था। (यह केवल ज्योतिष के संबंध का है)

टीका—पुराने चक्रों से पृथ्वीमाला के पूर्व मन्वन्तरों के गोलों का अर्थ है। पुराने गोले गलकर नये गोले बनते हैं। बीज से गोले बनने के बीज का अर्थ है अर्थात् आरंभ की प्रकृति। एक गुप्त ग्रन्थ में लिखा है, सूर्य फोहत के द्वारा आदि मूल को गोलों के आकार में जमा कराकर उन्हें मिलती (Converging) रेखाओं में या दिशाओं में चलाते हैं। वे पास-पास जाकर एकत्रित हो जाते हैं। अवकाश में किसी क्रम के बिना फैले रहने से ये विश्व के बीज अकसर आपस में टकराते हैं और अंत में एक दूसरे में चिपक जाते हैं। उसके पश्चात् वे भटकनेवाले (पुच्छल तारे) बन जाते हैं। फिर युद्ध होने लगते हैं। पुराने (गोले) नयों को आकर्षित कर लेते हैं और दूसरे उनको अपने पास से हटा देते हैं। बहुत से मर जाते हैं क्योंकि उनके बड़े साथी उन्हें निगल जाते हैं। जो बच जाते हैं उनसे लोक (या ग्रह) बनते हैं।

बीज = आध्यात्मिक अणु, ईथर के जीवधारी, देववर्ग, पृथ्वी के दोनोंउत्तर दक्षिण ध्रुवों (Poles) में विश्व की और पृथ्वी

की विद्युत् संग्रह होती है और वहाँ से बाहर भी भेजी जाती है। ऐसा न होता तो उन शक्तियों के संग्रह होते रहने से पृथ्वी कब की फट गई होती।

श्लोक ७—हे लानू (शिष्य) यदि तुम अपने छोटे चक्र की ठीक ठीक वय जानना चाहते हो तो अपनी गणना कर लो। उसका चौथा अर्रा हमारी माता है। निर्वाण को प्राप्त करनेवाले ज्ञानके चतुर्थ मार्ग के चतुर्थ फल को प्राप्त हो जाओ, और तब तुम समझ सकोगे, क्योंकि तुम देख सकोगे····।

टीका—छोटा चक्र = पृथ्वी ग्रहमाला। माता = हमारी पृथ्वी चतुर्थ मार्ग = अर्हत्, देखो श्लोक ४ पद्य खंड १

साधारण मनुष्य पृथ्वी की आयु का हिसाब नहीं लगा सकता पर अर्हत् और उस पद से ऊँचे महात्मा हिसाब लगा सकते हैं। अर्हत् पद के आगे भी तीन और ऊँचे पद हैं। अभी भी उतने उन्नतिप्राप्त महात्मा हैं, पर छठवीं और सातवीं मूलजातियों में साधारण विरक्त पुरुषों की इन्द्रियाँ भी उन्हें प्राप्त करने योग्य उन्नत हो जावेंगी।

पद्य खंड ७

पृथ्वी पर मनुष्य के पितृ

श्लोक १—चैतन्य रूप रहित जीवन का आरंभ देखो।

प्रथम दैवी (उपाधि), परमात्मा (Mother-Spirit) से निकला एक (आत्मा), फिर आध्यात्मिक (आत्मा-बुद्धि-मनस ; ये विश्व व्याप्त तत्व हैं)। (फिर) एक से तीन, एक से चार, और पाँच, जिसमें से तीन, पाँच और सात ये नीचे उतरते तिगुने और चौगुने हैं। ये प्रथम ईश्वर (ब्रह्मा) के सात (रचनेवाले) देदीप्यमान मानसपुत्र (सप्तर्षि) हैं। हे लानु ! तू, मैं, वह, ये सब वही हैं ; वे जो तेरी और तेरी माता पृथ्वी की निगरानी करते रहते हैं।

टीका:—इस में रचने वाले देवों की, ध्यानियों की, परंपराओं की उत्पत्ति का वर्णन है, तीन से एक इत्यादि = ३१४१५। तीन, चार, पाँच, १२ रचने वाली परम्पराओं का अर्थ है। सात मानसपुत्रों का सात ग्रहों से या ग्रहमालाओं से सम्बन्ध है। इनके बहुत विभाग और उप-विभाग भी हैं। यदि परब्रह्म की तुलना अन्धकारमय अभेद्य दुर्ग से की जावे, तो उस दुर्ग की भीत में सूराख शक्ति (गोला) भेजने को रहते हैं। ये सनातन और सदा बने रहते हैं। इन केन्द्रों से बने दूसरे दर्जे के छोटे केन्द्र अर्थात् केन्द्र से निकले छोटे केन्द्र कल्पारंभ में उत्पन्न होते हैं। परब्रह्म से त्रिमूर्ति रूप ईश्वर और उससे उतरती श्रेणियों के बहुत से छोटे बड़े देवों की परम्पराएँ उत्पन्न होती हैं।

एक अद्वितीय के पश्चात् प्रथम वर्ग के ध्यानी शुद्ध दिव्य अग्निमय हैं; दूसरे वर्ग के अग्नि और आकाश (Ether) मय हैं, तीसरे वर्ग में इन दो तत्वों के सिवाय जलतत्व और चौथे वर्ग में चौथा तत्व वायु मिलजाता है। ये तत्व हमारे तत्व नहीं हैं; उनके तन्मात्रा कदाचित होगें।

प्रथम वर्ग जगत् या विश्व के हृदय और नाड़ी रूप हैं; द्वितीय वर्ग विश्व के मन या चेतना रूप हैं। यह चेतना भी हमारी चेतना से बिलकुल भिन्न है। दूसरे वर्ग के देव भी अरूपही हैं, पर पूर्व वालों से विशेष स्थूल हैं; तीसरे वर्ग में आत्मा बुद्धि मनस के समान तत्व हैं। चौथे वर्ग से मनुष्यों के सचेतन अमर जीव बनते हैं। पंचम वर्ग मनुष्य से संबंध रखता है। छठवें ईथर के शरीरधारी छोटे देव गण (Nature Spirits or Elementals) हैं।

एक के पश्चात् दैवी अग्नि, फिर अग्नि और आकाश, फिर अग्नि, आकाश और जलतत्व, फिर ये पिछले तीन और वायु। ये तत्व हमारे तत्वों से ऊँचे और भिन्न हैं।

इन १२ प्रकार के उतरते वर्गों का स्पष्ट वर्णन नहीं दिया है।

श्लोक २—एक (महा) किरण से छोटी किरणें बनती हैं। रूप बनने के पूर्व जीवनतत्व (Life) बनता है और (रूप अर्थात् बाह्य शरीर के) अंतिम परमाणु के पीछे भी बना रहता है। माला-मणियों के सूत्र के समान यह जीवनकिरण (Life ray) एक रूपी भी असंख्य किरणों में से प्रविष्ट हो कर निकलती है।

टीका:—मालामणि = मनुष्य के जन्म। मनुष्य का बीज स्त्री रूपी भूमि में पड़कर अंकुर तब तक उत्पन्न नहीं कर सकता जब तक वह छः कोष वाले दिव्य मनुष्य के पाँच तत्वों या कोषों के उद्भव या रस से संयुक्त न हुआ हो, नहीं तो संतान अति मूढ़, बुद्धिहीन उत्पन्न होगी। विश्व व्याप्त जीवन तत्व (Universal Life) की क्रिया इस पृथ्वी पर पाँच प्रकारकी होती है। खनिज वर्ग में उसका संबंध पृथ्वी के छः प्रकार के देवों के सबसे नीचे तत्व से रहता है। वनस्पति वर्ग में उनके व्यक्तिगत प्राणतत्व से, पशुवर्ग में इन दो से और तीसरे वासना देह और चौथे वासनाओं से संबंध रहता है। मनुष्य में इन सबका और पाँचवें मन का फल गर्भबीज में समाया रहना चाहिये। इस प्रकार मनुष्य में ही जीवनतत्व की पूर्ण उपस्थिति रहती है। उसका सातवाँ तत्व आत्मतत्व विश्वव्याप्त सूर्य की एक किरण-मात्र है।

श्लोक ३—जब इस एक के दो बनते हैं तब त्रिगुण दीख पड़ता है। (क) ये तीनों एक में जुड़े हुए हैं; और हे लानु (शिष्य) यह हमारा सूत्र है, मनुष्य रूपी वृक्ष का, सप्तपर्ण नामवाले का, हृदय है। (ख)

सप्तपर्ण = मनुष्य के सात तत्व

इस श्लोक के दो अर्थ हैं प्रथम विश्वरचना वाला और दूसरा मनुष्यरचना वाला। (क) "जब एक दो बनता है तो त्रिगुण दीख पड़ता है" अर्थात् जब अद्वैत अनंत अपना प्रतिबिम्ब व्यक्त प्रदेश में डालता है तो वह प्रतिबिम्ब या किरण शून्य अवकाश में फैलकर अंधकार दूर करती है और उस प्रकृति में गर्भ होकर त्रिगुण बालक ब्रह्मांड उत्पन्न होता है।

चतुर्थ परिक्रमाकाल में मनुष्य का स्थूलशरीर अपने पूर्ण विकास को प्राप्त होता है। इससे आगे विकास सूक्ष्मता और आध्यात्मिकता की ओर झुकता है। प्रत्येक परिक्रमाकाल के और प्रत्येक गोले के रचने और गढ़नेवाले देवगण भिन्न भिन्न हैं। पर ऊँचे देवों की सहायता बिना अकेले पृथ्वी के देवगण केवल विचार क्रियाहीन पशु-मनुष्य ही बना सकते हैं।

श्लो०-४—चार बत्ती की तीन जिह्वावाली ज्योति रूपी वह जड़ है जो कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होती (क)। ये बत्तियां वे चिन्गारियां हैं जो सात में से निकलती तीन जिह्वावाली ज्योति (ऊपर की त्रयी) में से अपना प्रकाश या ज्योति लेती हैं। एक ही चन्द्र की किरणें और चिन्गारियाँ पृथ्वी की सब नदियों की बहती तरङ्गों पर प्रतिबिम्बित होती हैं।

टीका—(क) तीन जिह्वावाली अमर ज्योति = आत्माबुद्धि मनस; चार बत्तियाँ जो जलकर बुझ जाती हैं = मनुष्य के चार निचले शरीर स्थूल, प्राण, वासनादेह, कामसंकल्पयुक्त नीचामन।

(ख) जैसे सागर की उछलती और बहती तरंगों के ऊपर स्थित एक चंद्रमा का प्रतिबिम्ब गिरकर करोड़ों प्रकाश-चिन्गारियाँ नाचने लगती हैं वैसे ही हमारे क्षणभंगुर देहाभिमानी जीव, हमारे अमर जीवात्मा विशुद्ध आत्मा (Monad-ego) के मायामय आवरण या वस्त्र, माया की तरंगों पर नाचते हैं।

श्लो०-५—चिन्गारी (Monad मनुष्य का परमात्मतत्व) फोहत (जीवतत्व) के अति सूक्ष्म सूत्र से ज्योति से लटकती है।

वह माया के सात लोकों में भ्रमण करती है। (क) वह प्रथम (खनिज वर्ग) में रुकती है और धातु और पत्थर बनती है; वह द्वितीय वर्ग में प्रवेश करती है और वनस्पति रूप दीख पड़ता है; यह पौधा सात-सात रूपों में चक्कर खाकर एक पवित्र पशु (स्थूल मनुष्य की प्रथम छाया) बनता है। (ख)

इन सबके सम्मिलित गुणों से विचार करने वाला मनुष्य बनता है। उसे कौन बनाता है? सात जीव और एक जीवन तत्व (One Life)। (ग); उसे पूर्ण कौन करता है? पाँच प्रकार के वहूहा (अग्निष्वात्त पितृ) और अन्तिम शरीर को कौन पूर्ण बनाता है? मत्स्य, पाप, और सोम (ग)।

टीका—(क) माया के सात लोक = ग्रहमाला के सात गोले; सात परिक्रमाकाल। मत्स्य, पाप, चंद्र—किसी अमर व्यक्ति के चिह्न, जिसका खुलासा टीका में नहीं किया गया है।

फोहत का सूत्र = इस पद्य खंड के दूसरे श्लोक में बताया हुआ आत्मतत्व का बना सूत्र, जिसमें सब जन्मरूपी मणि पिरोये रहते हैं।

चिन्गारी = मनुष्य का अंतरात्मा (Ego) और परमात्म तत्व (Monad)।

(ख) हमारे परमात्म तत्व को आत्मा भी नहीं कह सकते क्योंकि वह तो एक अद्वितीय ब्रह्मन को किरणमात्र है। उसे नीचे लोकों में चेतना प्राप्त करने के लिये नीचे कोशों की और देव सहायकों की आवश्यकता पड़ती है। इस महा विश्व में कोई प्रकृति कण भी बिना जीवनतत्व का नहीं है चाहे वह जीवनतत्व उसमें सोता हुआ क्यों न मालूम पड़े। सबमें

जीवन है। अग्नि अपने आदि लोक में और आदि रूप में एक ही है; पर व्यक्त जगत में उसका प्रत्येक कण एक जीवन है जो दूसरे जीवनों को जला कर जीता है। इसीलिये अग्नि को हुताशन (Devourer) कहते हैं।

प्रथम अगम्य और अज्ञेय वस्तु से शीत प्रकाशमय अग्नि उत्पन्न हुई और उसने अवकाश (Space) में मूलप्रकृति को दधि समान बनाया। ये भाग आपस में लड़े जिससे आपसी संघर्ष से बहुत ताप और परिक्रमा की गति उत्पन्न हुई। फिर स्थूल अग्नि, गरम ज्वालाएं और पुच्छल तारे बने। ताप से गरम भाप, फिर पानी, कुहरा और गोले बने; पानी या जल तत्व और वायुतत्व बने। इसका यह अर्थ है कि आरंभ में एक एक परिक्रमा काल में एक एक तत्व बनता गया। हमारी पृथ्वी को भी प्रथम परिक्रमा काल के समय हुताशन कणों (Devourer) ने बनाया। अवकाश (Space) का प्रथम व्यक्त रूप आत्म तत्व (Spirit) है और उसका प्रथम व्यक्त रूप मूलप्रकृति (Matter) है। हमारा विशुद्ध आत्मा (Monad) अभी रूपलोक से या परानिर्वाण लोक से नीचे नहीं आता। प्रथम दीक्षा में वह जनलोक की हमारी आत्मा से मिल कर दीक्षा की शपथ ग्रहण करता है।

(ग) मत्स्य, पाप और सोम, ये अमर जीव के चिन्ह या संकेत हैं। मत्स्य से अमर अंतस्थ जीवात्मा का, पाप (Sin = यह chaldean भाषा में चंद्र का नाम है) सोम = चंद्र, सोमरस जिसके पीने से दीक्षित अंतर्ज्ञान की दैवी शक्ति प्राप्त करता है।

श्लोक ६—प्रथम उत्पन्न (आदि काल के) मनुष्य के समय से मौनद्रष्टा (हमारा परमात्मतत्व Silent-watcher और

उसकी छाया [मनुष्य कोश] के बीच का सूत्र प्रत्येक परिवर्तन [पुनर्जन्म] के साथ विशेष बलवान और प्रकाशमान बनता गया। [क] प्रातःकाल का सूर्यप्रकाश मध्यान्ह के तेज में परिणत हो गया है।

टीका—यदि मनुष्य घोर पाप को ग्रहण न करे तो हमारे परमात्म तत्व (monad) और हमारे कोशों के बीच का संबंध प्रत्येक जन्म में दृढ़तर होता जाता है और उसकी दिव्यता बढ़ती जाती है।

श्लोक ७—ज्योति ने चिन्गारी से कहा, "यह तेरा अभी का चक्र है, तू मेरा ही अंश, मेरा ही रूप और मेरी ही छाया है। मैं तुझमें समा गया हूँ और "हमारे पास लौट आने" के दिन तक तू मेरा वाहन बनी रहेगी, जब तू और मैं और दूसरे तुझमें और मुझमें फिर एकत्व को प्राप्त होंगे।" तब फिर गढ़ने वाले देव अपने प्रथम वस्त्र पहिन कर प्रकाशमान पृथ्वी पर उतरे और मनुष्यों पर, जो उन्हीं के रूप थे, राज्य करने लगे।

टीका—प्रलय काल में सब जीव लौट कर और अपने आदि मूल रूप को प्राप्त हो कर अनंत में फिर लय हो जावेंगे। मन्वन्तर के आरंभ में फिर निकल कर अपनी आगे आने वाली, पर ऊँची स्थिति में पुनः आरंभ करेंगे।

गढ़ने वाले तथा रक्षक देवगण (watchers) प्रथम और द्वितीय मूल जातियों में मनुष्य पर राज्य करते थे। उनके पीछे तीसरी मूल जाति में भी और महा पुरुष राज्य करते रहे। इन

सब लोगों ने मनुष्यजाति को ज्ञान सिखाया और सन्मार्ग से ले गये।

प्रकृति में तीन भिन्न विकास-योजनाएँ हैं जो हमारी ग्रह मालायें २२ प्रसंग पर आपस में गुंथी हुई रहती हैं। वे ये हैं :—

१—विशुद्ध आत्मा (Monad) संबंधी, जिसमें उसका और ऊँचा विकास हो।

२—बुद्धि संबंधी जो सौर या अग्निष्वात्त पितृ से आरंभ हुई और जिससे मनुष्य को बुद्धि और चेतना मिली।

३—स्थूल विकास चान्द्र या बर्हिषद् पितृओं की एस्ट्रल छाया से संबंध रखनेवाली, जिसमें मानसिक अनुभवों से परिमित और क्षणभंगुर अनंत, अक्षर और निरपेक्ष बने।

उपसंहार

'रचना का, और आरम्भ से अभीतक इस जगत का इतिहास सात अध्यायों में है। सातवाँ अध्याय अभी तक लिखा नहीं गया है।'

—स्वामी श्री टी० सुब्बाराव १८८१ के थिऑसोफिस्ट में

इन सात अध्यायों में से प्रथम अध्याय लिखने का प्रयत्न यहाँ समाप्त हुआ। यह प्रयत्न कितना ही निर्बल और अपूर्ण क्यों न हो, फिर भी वह सत्य के बहुत कुछ निकट है।

गुप्त ज्ञान की सत्यता की जाँच श्वेतसंघ परम्परा के ऋषि स्वयं अपनी दिव्यदृष्टि द्वारा करते चले आये हैं। इसलिए वह निरा अंधविश्वास नहीं है।

(१) इसका प्रधान प्रथम मूल सिद्धान्त एक समभाव दैवी वस्तु तत्व, (Substance Principle) एक मूल कारण है। इसे "वस्तु-तत्व" इस लिए कहते हैं कि वह व्यक्त जगत के—माया के—संबंध से तो वस्तु दीख पड़ता है; पर अनादि, अनन्त, केवल, दृश्य और अदृश्य अवकाश (Space) रूप से वह तत्व ही बना रहता है। वह सर्वव्यापी सत्य है, वह अमूर्त अरूप (Impersonal) इसलिए कहा गया है कि उस में सब कुछ समाया हुआ है। इस ज्ञान में उसका अमूर्तत्व (Impersonality) मूलसिद्धान्त है। वह विश्व के प्रत्येक परमाणु में व्याप्त है और स्वयं वह विश्व ही है।

(२) इस अज्ञेय निरपेक्ष तत्व के निश्चित समय-समय पर व्यक्त होने से विश्व बन जाता है। वह प्रकृति और पुरुष (Spirit) दोनों है। परब्रह्म और मूलप्रकृति वास्तव में एक ही वस्तु हैं, पर व्याप्त जगत के भाव से दो रूप से दीख पड़ती है। ईश्वर तो उसका प्रथम व्यक्त रूप है, पर इस ईश्वर को भी परब्रह्म मूलप्रकृति से ढँका दीख पड़ता है अर्थात् ईश्वर इस मूल प्रकृति को ही देख पाता है और निरपेक्ष परब्रह्म को नहीं।

(३) इस विश्व के प्रत्येक खंड में प्रत्येक वस्तु चेतनायुक्त है, पर प्रत्येक की चेतना भिन्न-भिन्न प्रकार की है। पत्थर में यदि चेतना का कोई लक्षण न दिखे, पर हम यह नहीं कह सकते कि उसमें किसी प्रकार की भी चेतना नहीं है। निर्जीव प्रकृति तो है ही नहीं।

(४) (व्यक्त) जगत भीतर से बाहर प्रगट होता है। जैसा कि विश्व में वैसा पृथ्वी पर, जैसा ऊपर वैसा नीचे; मनुष्य विश्व की एक छोटी नकल या स्वयं एक छोटा सा विश्व है। मनुष्य

का भी प्रत्येक कार्य पहले विचार में, भीतर उत्पन्न हो कर फिर बाहर प्रगट होता है।

सारे विश्व का अनुशासन, नेतृत्व, नियंत्रण, प्रायः अनंत प्रकार के देवगण की परंपराओं द्वारा होता रहता है। प्रत्येक देव का कार्य नियत है। ये कर्म और विश्व के नियमों के प्रतिनिधि हैं। इनकी चेतनाओं और बुद्धियों में अनंत प्रकार के भेद हैं। या तो ये देवगण पूर्व में मनुष्य रह चुके हैं या मनुष्यत्व प्राप्त करने की तैयारी कर रहे हैं। यह बात चाहे जितने काल में पूर्ण हो। ये आरंभिक या पूर्ण मनुष्य हैं और इनमें अहंता और कामना का पूर्ण अभाव है। इन पर माया का प्रभाव कम पड़ता है। मैं, मेरापन, और व्यक्तित्व (Individuality) का भान इन व्यक्तिगत देवों को नहीं होता पर सारी एक परम्परा के, एक प्रकार की देवपरम्परा भर में एक व्यक्तित्व का भाव रहता है। जैसे एक सेना के सब सिपाही अपने सेनानायक के हुकुम को अपना ही कार्य समझते हैं और उसमें अपना विचार नहीं जोड़ते; वैसेही ये देवगण अपने से ऊँचे देव अधिपति की आज्ञा का पूर्णतया पालन करते हैं। ये निर्जीव शक्तियाँ नहीं है, वरन् सजीव हैं।

मनुष्य में इन सब देवपरम्पराओं का मूलतत्व उपस्थित रहने के कारण वह इन परम्पराओं से ऊपर भी उठ सकता है। इन देवगण या देवों को पूजने की आवश्यकता नहीं है।

विश्व में केवल एक अविभाज्य और निरपेक्ष सर्वज्ञता और बुद्धि है और इसका कंपन प्रत्येक अणु में और सीमित (finite) महाविश्व के छोटे से छोटे बिन्दु में कंपित हो रहा है। लोग इसे अवकाश (Space) कहते हैं। इसका अंत नहीं हैं। पर

व्यक्त जगत में उसका प्रतिबिम्ब (reflection) पड़ कर पहले भेदयुक्त होने पर भी वह शुद्ध आत्मिक (Spiritual) ही बना रहता है और जो जीव उसमें उत्पन्न होते हैं उनमें ऐसी कोई चेतना नहीं होती जिसका हम विचार कर सकें। जब तक वे मनुष्य की चेतना और बुद्धि स्वयं व्यक्तिगत प्रयत्न से प्राप्त न कर लें, तब तक ये उन्हें प्राप्त नहीं होतीं।

सारी प्रकृति ऊँचे जीवन की ओर जा रही है। ऊपर से मालूम पड़ती अंधी शक्तियों के कार्य में भी योजना (design) रहती है। सारा विकास-क्रम (Evolution) उसका प्रमाण है।

जैसे घर बनाने वाला घर की योजना (plan) या नकशा बना कर मिस्त्री को समझा देता है और मिस्त्री शिल्पियों मजदूरों को लगा कर घर बनाता है, वैसे ही ईश्वर विश्व की योजना बना कर उसे सूर्यमंडल के बाहर के अर्थात् महाविश्व के मनोलोक में इस योजना (archetypes) को स्थित कर देता है और शिल्पी देवगण (Builders) उसके अनुसार हमारे जगत को गढ़ते हैं। ईश्वर को इस ज्ञान में पुरुष रूप नहीं माना है। शक्तियाँ, कोई-कोई तो प्रकृतिस्थ विचारहीन ऊँची शक्तियाँ हैं पर इनका नियंत्रण करने और चलानेवाली एक विश्वचेतना है। इसलिए मनुष्य को स्वयं प्रकृति का सहकारी बन कर उसकी विकास-क्रिया में सहायता देनी चाहिये।

प्रकृति (Matter) अनादि अनंत है। अनादि अनंत मन उसमें गढ़ता है। इस विश्व में बुद्धियुक्त या अर्धबुद्धि-युक्त शक्तियाँ कार्य करती हैं।

(१७) एक गुप्त टीका में हमारी चेतना से हमारे सूर्य मंडल के भीतर के विषय में इस प्रकार लिखा है।

"प्रलय के अन्त में और कल्प की संधि के समय आदिसत्ता चैतन्य आत्मिक गुण (Conscious Spiritual Quality) के रूप में दीख पड़ती है। व्यक्त जगतों (सूर्य मंडलों) में वह समाविश्थ द्रष्टाको रूपधारी आध्यात्मिकता (Objective Subjectivity) ईश्वरी श्वाँस की पटल के समान दीख पड़ती है। शून्य से निकल कर अनंत में वह अवर्ण आध्यात्मिक तरल सी जान पड़ती है। वह हमारे ग्रहों के लोक में, सातवें लोक में और सातवीं स्थिति में है।

(१८) हमारी आध्यात्मिक दृष्टि को वह पदार्थके रूप में दिखती है पर जागृत अवस्था में हम उसे यह संज्ञा नहीं दे सकते। इसलिए लोग अज्ञान से उसे ईश्वरतत्व (God-Spirit) कहते हैं।

(१९) वह सर्वत्र व्याप्त है और प्रथम नीव है जिस पर सूर्य मंडल की स्थापना होती है। सूर्य मंडल के बाहर वह अपनी शुद्ध अवस्था में तारों या विश्वों के बीच में पाई जाती है। लय अवस्था (zero) वाले उसमें अभी रचना के उषःकाल आते तक विश्राम करते हैं। हमारी पृथ्वी की प्रकृति से वह भिन्न है। लोग उसमें से देख सकते हैं, इसलिए अज्ञान से उसे खाली अवकाश कहते हैं। सारे अनंत विश्व में उँगली भर स्थान भी खाली नहीं है।

(२०) हमारे जगत के भीतर और बाहर भी प्रकृति की सात-सात अवस्थाएँ हैं और इन अवस्थाओं के और भी सात-सात अन्तर्खण्ड घनता के क्रमानुसार हैं। जो सूर्य हम देखते हैं, वह सातवीं अवस्था की प्रथम या अन्तिम सातवीं अन्त अवस्था को प्रगट करता है। यह मूल सातवीं अवस्था विश्वव्याप्त

उपस्थिति (Presence) की अति ऊँची, पवित्र से पवित्र सनातन अव्यक्त सत्ता (be-ness) की प्रथम व्यक्त श्वास है। सब केन्द्रस्थ स्थूल सूर्यों की प्रकृति इस श्वास (the Breath) के प्रथम तत्व की सबसे नीची स्थिति है। ये सब स्थूलमूर्त सूर्य अपने असल सूर्यों के आभासमात्र (Reflections) हैं। आध्यात्मिक देवों को छोड़ कोई इन्हें देख नहीं सकता। इन देवों के शरीर मूलप्रकृति के सप्तम खंड के पंचम (नीचे से) अन्तर्खण्ड के बने हैं। इसलिए वे सूर्यों की प्रतिबिम्बित (reflected = आभासित) प्रकृति से चार अन्तर्खण्ड ऊँचे हैं। जैसे मनुष्य शरीर में सात तत्व होते हैं, वैसे ही उसमें तथा सारी प्रकृति में सात सात शक्तियाँ होती हैं।

(२१) गुप्त सूर्य की सच्चीप्रकृति मूलप्रकृति का एक संचय है। हमारे सूर्यमंडल या सौरजगत की सारी जीवित और वर्तमान शक्तियों का हृदय और उत्पत्ति स्थान है। वह बीज या सार है, जिससे वे सब शक्तियाँ अपनी विश्वयात्रा के लिए फैलती हैं और परमाणुओं को अपने कार्यों में लगाती हैं। वह बीज ऐसा केन्द्र भी है जहाँ ये सब शक्तियाँ प्रत्येक ग्यारह वर्ष पीछे अपने सप्तम सार (Seventh Essence) में फिर मिलती हैं। जो तुमसे कहे कि मैंने सूर्य को देखा है उसकी ओर हँसो। उसका यह कहना ऐसा ही असत्य है जैसे यह कहना कि सूर्य प्रति दिन की अपनी यात्रा सचमुच में करता है।

(२३) सूर्य का स्वभाव सात प्रकार का होने के कारण उसे पूर्व के लोगों ने सात घोड़ों के रथ वाला, जो घोड़े वेदों के सात छंदों के बराबर हैं, कहा है। या और सूर्य बिम्ब के भीतर के सात प्रकार के जीवों (Beings) से उसकी एकता बताते हैं, पर वह उनसे वास्तव में भिन्न है। लोग उसे सात किरण वाला

(Seven Rays) कहते हैं और वास्तव में उसको सात किरणें होती हैं··· ।

(२५) सूर्य के सात जीव, सात पवित्र देव मूलप्रकृति की गर्भस्थ शक्ति से उत्पन्न स्वयंभू हैं। सात किरणें कहलानेवाली सात प्रधान शक्तियों को ये ही भेजते हैं। ये शक्तियाँ अब आनेवाले प्रलय के आरंभ में नये विकास के लिए नये सात सूर्यों में केन्द्र स्थित होंगी। जिस शक्ति से ये प्रत्येक सूर्य में सचेतन जीवन में उत्पन्न होती हैं उसे कोई-कोई विष्णु कहते हैं जो निरपेक्ष ब्रह्मन् (Absoluteness) को श्वासमात्र है। हम लोग उस शक्ति को व्यक्तजीवन (Manifested life) कहते हैं और यह निरपेक्ष ब्रह्मन् का प्रतिबिम्ब है।

(२६) इस पिछले (ब्रह्मन्) को शब्द या बोली में नहीं कहना चाहिये, नहीं तो कदाचित् वह हमारी कुछ आध्यात्मिक शक्तियों को जो उसकी दशा की ओर आकर्षित होती हैं, अपने में खींच लेवें। ये उसकी ओर वैसे ही सदैव खिंचती रहती हैं जैसे सारा स्थूल जगत उसके (ITS) व्यक्त केन्द्र की ओर आकर्षित होता है ।

(२७) प्रथम वर्णित—आरंभ का जीवन (Initial existence) या व्यक्त जीवन—जिसे इस स्थिति में रहते तक एक जीवन (ONE LIFE) कहते हैं—वह उत्पादन या रचने के लिए एक पटल मात्र है, जैसा पूर्व में कह आये हैं। यह सात दशाओं में प्रगट होता है, और प्रत्येक की सात अन्तरदशाएँ हैं। ये धर्म ग्रन्थों में वर्णित ४९ अग्नि हैं ।"

[ये संख्याएँ इसी गुप्त भाष्य की हैं। सभी धाराएँ उद्धृत नहीं की गयी हैं।]

२ मनुष्य-रचना

पूर्व कथन

मनुष्यरचना के विषय में गुप्त ज्ञान तीन नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है :—

१—पृथ्वी के सात भिन्न भागों पर सात मनुष्य-समूह एक साथ विकास क्रम से प्रगट हुए ।

२—सूक्ष्म वासनादेह (Astral body) * स्थूल शरीर के पूर्व प्रगट हुआ। उसी के नमूने पर स्थूल शरीर बना और

३—इस (चतुर्थ) परिक्रमा काल में मनुष्य सब स्तनपायी पशुओं से—मनुष्याकृति के बड़े बंदरों से भी—पूर्व प्रगट हुआ।

प्रथम सात समूहों वाली मनुष्यरचना पितृओं ने रची पर वह रचना पूर्ण न थी ; तब तक मनुष्य में स्त्री-पुरुष का भेद न बन पाया था। प्रथम निर्लिंगी मनुष्यजाति का स्थूल शरीर केवल ईथरप्रकृति का बना था। वह प्रथम मूलजाति के अपने निर्यास या प्रस्वेद (exudation) से उत्पन्न संतान भी द्वितीय जाति में समा गई। और इस प्रकार प्रथम मूलजाति का अन्त हुआ। यह द्वितीय जाति आरंभ में अपूर्ण, उभय-लिंगी थी। इनका पुनर्जन्म आरंभ की तृतीय उभयलिंगी (Androgynes) जाति में हुआ। पिछली तृतीय मूलजाति में स्त्री-पुरुष अलग-अलग हो गये थे। प्रत्येक जाति के समय में

* कुमारी एलिजेबेथ प्रेस्टन ने अपनी पुस्तक 'स्टोरी ऑफ मैन' (मानव की कथा) में लिखा है कि यहाँ 'एस्ट्रलबॉडी' शब्द का व्यवहार 'ईथरिक डबल' (प्राणमय कोष) के अर्थ में हुआ है। प्राणमय कोष के ही आकार का स्थूल शरीर बनता है। —संपादक

पृथ्वी का रूप प्रलय से बदल जाता था। इसलिए उस पृथ्वी व्यवस्था के नाम भी अलग-अलग पड़े। प्रथम को अमर पवित्र भूमि (Imperishable Sacred Land)—हिन्दू शास्त्रों में पुष्कर द्वीप—नाम दिया है। यह भूमि उत्तर ध्रुव के आस-पास थी। द्वितीय मूल जाति की भूमि को हिन्दू शास्त्रों में प्लक्ष द्वीप (=Hyperborean) कहा है। यह उत्तर एशिया की जगह पर थी। तीसरी मूल जाति की भूमि को लेम्यूरिया (Lemuria) कहते हैं। हिन्दू शास्त्रों में इसका नाम शाल्मलि द्वीप है। प्रधानतः यह भूमि वर्तमान हिन्दमहासागर में मेडेगास्कर और लंका से ऑस्ट्रेलिया तक थी। कुछ भाग अफ्रिका, नॉरवे, स्वीडन, पूर्व पश्चिम साइबेरिया भी इसमें थे। हिमालय इसी समय उठा था। चौथी मूल जाति की भूमि का नाम एटलांटिस (Atlantis) था जिसे हिन्दू शास्त्रों में कुश द्वीप कहा है। इसमें उत्तर एशिया, गोबी मरुस्थल, चीन, जापान, उत्तर प्रशान्तमहासागर, उत्तरअमेरिका के पश्चिमी किनारे तक, हिन्दुस्तान, ब्रह्मदेश, अरबादि देश शामिल थे। पाँचवीं जाति की भूमि का नाम हिन्दू शास्त्रों में जम्बू द्वीप दिया है। यह उत्तरी हिंदुस्तान से लेकर पश्चिम युरोप की समाप्ति तक है। फारस अरब आदि इसके अंतरगत हैं। अगली छठी जाति का महाद्वीप अमेरिका और प्रशान्त महासागर का भाग होगा। मनुष्य को बने कोई १,८०,००,००० वर्ष हो गये मनुष्य विकास का पूरा हाल अंग्रेजी पुस्तक (Man, Whence, How, & Whither) में सरल भाषा में दिया है और इस पुस्तक के आधार पर इसी नाम (मानव, कहाँ से, कैसे और किधर ?) की एक संक्षिप्त हिन्दी पुस्तक छपी है, जिसे पढ़ कर यह विषय विशेष सरल हो जायगा।

पद्य खंड १

सचेतन जीवन का आरंभ

श्लो०-१—जोल्हा या ध्यानी देव चौथे (ग्रह या पृथ्वी) को घुमाता है। वह सात (ग्रहों) के देवों का आज्ञाकारी है जो अपने-अपने रथों (गोलों) को अपने स्वामी—हमारे विश्व के एक चक्षु—के आस-पास घुमाते हैं। उसकी श्वास से सात (सात ग्रहमालाधिपों) को जीवन मिला। उस श्वास ने प्रथम को जीवन दिया।

टीका—एक चक्षु = आध्यात्मिक सूर्य। एक टीका में लिखा है, "सात बड़े सात देवों से जगत रचवाते हैं।" इसलिए हमारी पृथ्वी को पृथ्वी के देवों ने गढ़ा। सात बड़े केवल निगरानी करते थे।

श्लो०-२—पृथ्वी ने कहा, हे देदीप्यमान मुखवाले स्वामी (सूर्य), मेरा घर खाली है·······इस चक्र को बसाने के लिए अपने पुत्रों को भेजिये। आपने सात पुत्रों को बुद्धि के पति (बुद्ध ग्रह) के यहाँ भेजा है। मेरी अपेक्षा वह सात गुना आपके निकट है। सात गुना अधिक प्रताप (प्रकाश और ताप) उसे मिलता है। आपने दासों को—छोटे चक्रों को, आप का प्रकाश और ताप पाने की, आपके महान प्रदान को उसके

मार्ग में रोक लेने की, मनाही की है। (क) अब अपनी सेविका के लिए भेजिये।

टीका—बुध ग्रह पृथ्वी का ज्येष्ठ भाई है। छोटे चक्र= पृथ्वी और सूर्य के बीच के छोटे ग्रह (गुप्त ज्ञान संहिता भाग दो पृ० २८—५४२ में बुध शुक्र और सूर्य को एक कहा है।) बुध और शुक्र सूर्य के निकट होने से विशेष प्रकाश और ताप पाते हैं। पृथ्वी के पापों का प्रभाव शुक्र पर पड़ता है और शुक्र में परिवर्तन का असर पृथ्वी पर होता है।

(क) सूर्य देव से आता जीवन और सारी जीवन की तथा दूसरी शक्तियाँ पृथ्वी को सात ग्रहमालाधिपों द्वारा मिलती हैं। पृथ्वी शुक्र का छोटा भाई और गोद लिया पुत्र है।

मनुष्य की सात मूलजातियाँ एक-एक ग्रह के प्रभाव के नीचे हैं, जैसे प्रथम सूर्य के, द्वितीय बृहस्पति के, तीसरी शुक्र के, चौथी (और चौथा गोला पृथ्वी भी) चंद्र के, पंचम बुध के नीचे है। पृथ्वी का अधिपति देव शुक्र का मातहत है। पृथ्वी के पाप से शुक्र को भी कष्ट पहुँचता है। शुक्र के परिवर्तन का असर पृथ्वी पर पहुँचता है।

श्लोक-३—देदीप्यमान मुख वाले प्रभु ने कहा, जब तेरे कार्य का आरम्भ होगा तब मैं तेरे पास एक अग्नि भेजूँगा। दूसरे लोकों से भी माँग। तेरे पिता कुमुदपति से उनके लड़के माँग। ·······तेरे मनुष्य पितृओं (के स्वामी यम) के अधिकार में रहेंगे; तेरे मनुष्य मर्त्य होंगे; बुद्धिपति (बुद्धग्रह) के मनुष्य अमर हैं; सोम के पुत्र अमर हैं। अपनी दुःखकथा बन्द

कर। तेरे सात चर्म अभी भी तेरे ऊपर हैं·······तू अभी तैयार नहीं है। न तेरे मनुष्य अभी तैयार हैं।"

टीका—कुमुदपति=चन्द्र; पूर्व मन्वन्तर में चन्द्रमा पृथ्वी के स्थान पर था। माला के पुनर्जन्म में चंद्र की बहुत कुछ सामग्री पृथ्वी में आ समाई। पृथ्वी के मनुष्य चंद्र के पशु या मनुष्य थे। बुध के मनुष्य ज्ञान के कारण अमर कहे जा सकते हैं। "तेरे मनुष्य"=तेरे प्रथम सात मनुष्यसमूहों के उत्पादक। उस समय पृथ्वी बहुत गरम और ज्वालामुखियों से पूर्ण थी। पूरी बन न चुकी थी।

श्लोक ४—भारी कंपों के पश्चात् उसने अपने पुराने तीन (चर्म) निकाल डाले और नये सात चर्म धारण किये और प्रथम पहन कर खड़ी रही।

टीका—भारीकंप=पृथ्वी की बनावट में परिवर्तन, भूकंप ज्वालामुखी प्रलयादि से। पुराने तीन: प्रथम तीन परिक्रमा वालों के चर्म अर्थात् ऊपरी बनावट। अभी चतुर्थ परिक्रमा काल चल रहा है।

पद्य खंड २

बिना सहायता के प्रकृति असमर्थ

बहुत युगों के पश्चात् पृथ्वी भयंकर आकृति के जीव रचती है।

श्लोक ५—तीस करोड़ वर्षों तक चक्र घूमता रहा। उसने रूप बनाये। नरम पाषाण जो कड़े हो गये; कड़े वृक्ष जो नरम हो गये। अदृश्य से दृश्य रूप कीड़े और छोटे जीव, बनाये। परंतु जब माता इनसे भर जाती थी तो वह इन्हें हिला कर गिरा देती थी। तीस करोड़ (वर्षों) के पश्चात् उसने करवट बदली, वह अपने पीठ के बल लेटी; करवट पर लेटी। उसने स्वर्ग के पुत्रों को नहीं बुलाया, न ज्ञान (बुद्धि) के पुत्रों को बुलाया। वह अपने हृदय में से ही गढ़ने लगी। उसने पानी वाले मनुष्य भयंकर और बुरे बनाये।

टीका—कड़े पत्थर = खनिजवर्ग। नरम वृक्ष = वनस्पतिवर्ग। छोटे जीव = रेंगने वाले कीड़े। हिला कर गिरा देना = पृथ्वी की बनावट में प्रलय द्वारा परिवर्तन। करवट बदलना = पृथ्वी के अक्ष या धुरी (axis) की दिशा का बदलना; यह कई बार हो चुका है। इसके कारण जल प्रलय और गड़बड़ी हो जाती है। इसी कारण भयंकर रूप आधे मनुष्य आधे पशु उत्पन्न हुए।

श्लोक ६—भयंकर और बुरे जलमनुष्यों को उसने स्वयं दूसरों (खनिज, वनस्पति और पशु वर्गों) के बचे तत्वों से उत्पन्न किया। प्रथम, द्वितीय और तृतीय (परिक्रमा काल)

के गारे और कीचड़ से उसने इन जलमनुष्यों को उत्पन्न किया। ध्यानी (देव) आये और देखा···प्रकाशमय माता-पिता के ये ध्यानी, श्वेत लोकों से (चंद्र सूर्य से) अमर देवों के स्थान से आये।

टीका—ध्यानी = सौर और चांद्र देव, ग्रह माला के देवता, शिल्पी देव। मातापिता = सौर चान्द्र। स्थूलप्रकृति खनिज, वनस्पति और नीचे पशुओं को स्वयं बना सकती है, पर बनाने के लिए उसे आध्यात्मिक और बुद्धि संबंधी शक्तियों की आवश्यकता पड़ती है, जो उसमें न थीं।

श्लोक ७—वे अप्रसन्न हुए। (उन्होंने कहा) हमारा मांस उनमें नहीं है। पाँचवीं के, हमारे भाइयों के लिए ये रूप अयोग्य हैं। जीवों के लिए ये योग्य निवासस्थान नहीं हैं। वे शुद्ध जल पियेंगे, मैला जल नहीं। चलो, हम इसे सुखा डालें।

टीका—पाँचवीं = पाँचवीं मूलजाति; शिल्पी देव गण। जीवों के लिए = तृतीय परिक्रमा काल के मनुष्यों के विशुद्ध आत्माओं (monads) के लिए।

श्लोक ८—अग्नि ज्वालाँ आईं। चिन्गारीयुक्त अग्नि गण; निशाग्नि, दिवसाग्नि (देव गण, ध्यानी)। उन्होंने मैला काला जल सुखा दिया। अपने ताप से उन जलों को सुखा दिया। ऊँचे लोक के ल्हा (देव) नीचे लोक के देव गण आये। उन्होंने द्विमुखी और चतुर्मुखी रूपों को काट डाला। उन्होंने बकरे के शरीरवाले मनुष्यों, कुत्तों के सिरवाले

मनुष्यों, और मत्स्य शरीरधारी मनुष्योंको काट डाला।

टीका—अग्नि ज्वालाएँ = प्रथम वर्ग के रचने वाले देव गण नीचे लोक के देवगण = भूलोक से एक सीढ़ी ऊंचे पद के देवगण, ईथर वाले।

श्लोक ९—जल माता महासागरा, रोने लगी। वह उठी और चंद्र में समा गई जिसने उसे उठाया था, जिसने उसे उत्पन्न किया था।

टीका—चन्द्र पृथ्वी का पिता। चन्द्र तृतीय मन्वंतर में पृथ्वी के स्थान पर था। चौथे मन्वंतर में उसकी सामग्री से पृथ्वी बनी। अब चंद्र के आकर्षण से समुद्र में ज्वारभाटा आने लगा।

श्लोक १०—जब रूप नष्ट हो गये तो पृथ्वी माता खाली रही। उसने सुखाये जाने की प्रार्थना की।

टीका—भयंकर रूपवाले समुद्र से उत्पन्न हुए थे। अब पृथ्वी के सूखने का समय आ गया था, क्योंकि पानी अलग हो कर एकत्रित हो गया था। अब नये जीवन का आरंभ था।

पद्य खंड ३

मनुष्य बनाने के प्रयत्न

श्लोक ११—अधिपाधिप (ग्रहमालेश्वर, ब्रह्मा के पुत्र) आये। उसके (पृथ्वी के) शरीर से पानी अलग किया और यह ऊपर का स्वर्ग, प्रथम स्वर्ग बना।

टीका—प्रथम स्वर्ग = वायुमंडल, आकाश।

श्लोक १२—इन महाचौहानों ने चंद्रलोक वासी वायु सरीखे सूक्ष्म देहवाले पितृओं को बुलाया (और उनसे कहा) मनुष्यों को उत्पन्न करो, तुम्हारे स्वभाव के मनुष्यों को। उनके भीतर का रूप तुम बनाओ वह (पृथ्वी) बाहर का शरीर बना देगी। वे नर और नारी होंगे। अग्निपति भी···· (आयेंगे।)

टीका—महाचोहान से महा स्वामी या स्वामी का अर्थ है। आज कल महाचौहान से दूसरा अर्थ होता है। उनके भीतर का = विशुद्ध आत्माओं (Monads) का। पितृओं से ईथर छाया देह, प्राण, और वासनादेह बनते हैं। बाहर का शरीर = स्थूल शरीर। अग्निपतियों से मनतत्व की प्राप्ति होगी।

श्लोक-१३—वे गये, प्रत्येक अपने-अपने नियत पृथ्वीभाग पर; वे सात, प्रत्येक अपने-अपने भाग पर। अग्नि पति

(Lords of the Flame) पीछे रहे। वे नहीं आये। उन्होंने रचने से इन्कार किया।

टीका—वे = चंद्रपितृ।

अपने-अपने नियत पृथ्वी भाग पर = सात नियत विभागों पर और भिन्न-भिन्न मनुष्य जातियों में।

अग्निपति""इन्कार कर दिया। चंद्र पितृओं ने वासना देह, प्राण, ईथर बना दिये, पर जीवात्मा का इनसे संबंध नहीं हो सकता था। पुराणों में कथा है कि दक्ष के हर्यश्व नाम के पुत्रों ने प्रजा उत्पन्न करने से इन्कार किया। इन दोनों को मिलाने के लिए बीच में मन चाहिये। चंद्रपितृ मन नहीं दे सकते थे। सौरपितृ में मन था, पर उनमें उनके बहुत ऊँचे होने के कारण रचना करने की इच्छा नहीं थी। ब्रह्मा के मानसपुत्रों ने सृष्टि रचने से इन्कार किया, इसका यही अर्थ है। अग्निष्वात्त पितृ ही अग्निपति हैं। इनके लायक मनुष्य देह अभी बना नहीं है। तृतीय मूलजाति में ये मनुष्य-देहों में जन्म लेकर उसे मन बुद्धि प्रदान करेंगे।

पद्य खंड ४

प्राथमिक जातियों की उत्पत्ति

श्लोक-१४—सप्त समूह, इच्छा शक्ति से उत्पन्न स्वामी, प्राण देने वाले देव (फोहत) से प्रेरित हो, प्रत्येक अपने खंड में अपने में से मनुष्य अलग निकालते हैं।

टीका—सप्त समूह = चांद्र पितृ।

इच्छा शक्ति से उत्पन्न = मानस पुत्र, स्वयंभू।

मनुष्य अलग करते हैं = अपने में से छाया निकालते हैं अर्थात् वासना देह या ईथरदेह मनुष्य के बसने के लिए निकालते हैं। यह छाया निर्यास (exudation) है, पर वह छाया विशेष कर ईथर की ही है।

श्लो०-१५—(इस प्रकार) भविष्य के (मन हीन). मनुष्यों की सात गुनी सात छायाएँ, प्रत्येक अपने निज वर्ण और प्रकार की, उत्पन्न हुई। प्रत्येक अपने (उत्पन्न कर्ता) पितृ से उतरती या हीन थी। अस्थिरहित पितृ अस्थियुक्त जीवों को प्राण नहीं दे सकते थे। उनकी संतान रूप और मनरहित भूत थी। उसी लिए उसे छायारूप जाति कहते हैं।

टीका—सात गुनी सात = प्रत्येक मूलजाति में सात उप जातियाँ होती हैं; सात मूलजातियाँ, सात गोले, सात लोक,

सात ग्रहाधिपति, इस प्रकार पवित्र संख्या सात का मनुष्य जाति से विशेष संबंध है।

कुछ निर्माणकार्यों ने भी मनुष्यके कल्याणार्थ उस जाति में जन्म लेकर उसके ऋषि, देव राजा, अवतार, बन कर अपना आत्मसमर्पण किया। सात मनुष्य जातियाँ भी अलग-अलग वर्ग और प्रकार की हैं। छायारूप जाति=छाया से ऐस्ट्रल शरीर का अर्थ है जैसे सूर्यपत्नि संज्ञा अर्थात् आध्यात्मिक चेतना, तप करने जाते समय सूर्य के पास अपनी छाया या अपना ऐस्ट्रल शरीर छोड़ गई।

श्लोक १६—सच्चे (स-मनस) मनुष्य कैसे जन्मते हैं? मनस युक्त मनुष्य, ये कैसे बनते हैं? (बर्हिपद) पितृओं ने अपनी अग्नि (कव्य वाहन) की सहायता ली, जो अग्नि पृथ्वी के भीतर जलती है। पृथ्वी के देव ने अपनी सहायता के लिए सूर्य की अग्नि (शचि) को बुलाया। (पितृ और दो अग्नियों) इन तीनों के इकट्ठे प्रयत्न से अच्छा रूप बना। वह खड़ा हो सकता था, चल सकता था, दौड़ सकता था, लेट सकता था उड़ सकता था। पर वह अब भी छाया मात्र, बुद्धिरहित छाया थी।

टीकाः—इन तीनों के=चान्द्र पितृ और दो अग्नियों के

"विश्व मनस के पुत्र मनुष्य रूपी वृक्ष को शीघ्र उगानेवाले हैं। सोते जीवन रूपी सूखी भूमि पर बरसते जल रूप वे हैं। मनुष्य रूपी पशु को सजीव बनानेवाली चिन्गारी वे हैं। वे आध्यात्मिक अनंत जीवन के स्वामी हैं। आरंभ (द्वितीय मूल जाति) में इनमें के कुछ प्रभुओं ने मनुष्यों में केवल अपने तत्त्व की

श्वास फूंकी और कुछ ने मनुष्यों में अपना वासस्थान बनाया।" (एक टीका से उद्धृत।)

श्लोक १७—श्वास (मनुष्य विशुद्धात्मा Monad) को रूप की आवश्यकता थी; पृथ्वी ने उसे गढ़ा। श्वास को प्राण देव (Spirit of Life) की आवश्यकता थी। सूर्य के देवों ने उसे उस रूप में फूँक दिया। श्वास को शरीर का दर्पण (वासनादेह, ईथर शरीर) चाहिये था। ध्यानी देवों (Spiritual intelligences) ने कहा, हम उसे अपना दे देते है। श्वास को कामरूप (vehicle of desire) चाहिये था। पानी बहाने वाले (कामना की अग्नि और पशु जन्मजात बुद्धि) ने कहा कि यह उसके पास है। पर श्वास को विश्व को आलिंगन करने के लिए मन चाहिये था। पितृओं ने कहा यह हम नहीं दे सकते। पृथ्वी के देव ने कहा यह तो हमारे पास कभी था ही नहीं। बड़ी (सौर) अग्निने कहा यदि मैं अपना दे दूँ तो यह रूप जल जायगा।....(नवजात) मनुष्य केवल बुद्धिहीन भूत बना रहा।....इस प्रकार अस्थिहीनों ने उनको जीवन दिया (Life) जो (पीछे से) तीसरी (मूलजाति) में अस्थियुक्त मनुष्य बने।

टीकाः—दर्पण=ईथर शरीर विशेष ठीक होगा

कामरूप और वासना देह एक ही हैं

बड़ी अग्नि=सौर अग्नि, कदाचित् सौरलोगस या ईश्वर

मनुष्य=नवजात मनुष्य।

इस श्लोक की टीका १८ श्लोक के साथ है।

पद्य खंड ५

द्वितीय मूलजाति का विकास

श्लोक १८—प्रथम (जाति) योग के पुत्र थे। उन के पीत पिता और श्वेत माता की संतान थे।

टीका—प्रथम = प्रथम मूलजाति

पीतपिता, श्वेतमाता = सूर्य और चंद्र = सौर ध्यानी और चांद्र पितृ। इस पर एक गुप्त टीका इस प्रकार लिखती है, "सूर्य और चंद्रमा के पुत्र ईथर या वायु के लालनपालन में थे। वे सूर्य चंद्रमा की छाया के छाया थे। ये छायाएँ फैली।" पृथ्वी के देवों ने उन्हें (स्थूल शरीररूपी) कपड़ा पहनाया। सूर्य के देवों ने उन्हें ताप दिया (नये स्थूलशरीरों में प्राणभर कर रखा)। श्वास में जीवन था पर बुद्धि नहीं थी। उनमें अपने अग्नि और जल न थे।

आरंभिक स्थूल मनुष्य का "पिता" सूर्य में स्थित प्राणदायक विद्युत चिन्गारी है। चंद्र उसकी माता है, क्योंकि गर्भाधान और गर्भ पर चंद्र का बड़ा गुप्त प्रभाव है। वायु या ईथर द्वारा वे प्रभाव इन दो उत्पादकों से निकलकर पृथ्वी पर प्रसरते हैं। इसी कारण वायु धातृ है। केवल आत्मिक अग्नि ही मनुष्य को दैवी और पूर्ण व्यक्ति बनाती है। यही मनुष्य विशुद्ध आत्मा या परमात्मतत्व (Monad) है। अज्ञातरूप से अरूप लोकों में उसकी शक्ति मनुष्य में कार्य करती रहती है। ढाई

मूलजातियों में पितृओं की वासनादेह रूपी छाया ही मनुष्य के विकास का कारण रही। जबतक जीवात्मा (Ego) विशुद्ध आत्मा की ओर आकर्षित न होगा, तबतक देहाभिमानी निम्न मन (Personal self) की जीत होती रहेगी। विशुद्ध आत्मा अरूपलोकों में शक्तिमान है, पर हमारे लोक में वह अक्रिय है।

श्लोक १९—दूसरी मूलजाति कली से दूसरा वृक्ष बनने की क्रिया के समान क्रिया से उत्पन्न हुई थी। लिंग भेद बिना की (Sexless) (छाया) जाति से ये स्त्री-पुरुष भेदरहित (A-sexual) रूप बने। हे लानु, द्वितीय जाति इस प्रकार उत्पन्न हुई।

टीका:—कली⋯क्रिया से उत्पन्न = स्वेदज

(Sexless) निर्लिंगी और (A-Sexual) लिंग भेद-रहित में थोड़ा अंतर है। पीछे उपसंहार पृष्ठ देखिये।

कोई कोई छोटे वृक्ष और अमीबा सरीखे कीटाणु कलियों द्वारा एक के दो होते हैं, उस प्रकार प्रथम जाति के एस्ट्रल रूप के आस पास के ओजस रूप (aura) से एक वैसा ही छोटा रूप कली के समान फूटता था और ओजस से पोषण पाता हुआ अंत में स्वतंत्र व्यक्ति बन जाता था। आरंभ की द्वितीय जाति स्वेदज की पिता थी। पिछली द्वितीय स्वयं स्वेदज जाति थी। इस क्रिया के रूपान्तर में कई युग लग गये।

श्लोक २०—उनके पिता स्वयंभू (Self-born) थे जो संध्या के पुत्र, पितृओं के तेजस्वी शरीरों में से छाया रूप से निकले थे।

टीकाः—स्वयंभू=किसी देव या महात्मा की इच्छा शक्ति से उत्पन्न देव या जीव।

संध्या के पुत्र=पुराणों में ब्रह्मा के संध्या के शरीर से उत्पन्न पितृ। चान्द्र ग्रहमाला के मनुष्य।

श्लोक २१—जब यह (प्रथम) जाति वृद्ध हुई तो पुराने जल नये जलों से मिल गये। (अर्थात् प्रथम जाति दूसरी जाति में समा गई)। (क) जब उसके बिन्दु मैले हो गये तब वे जीवन के नये उष्ण प्रवाह में समाकर एक हो गये। प्रथम जाति बाह्य (एस्ट्रल या ईथर का शरीर) दूसरी जाति का अंतरशरीर (सूक्ष्म) बन गया। (ख) पुराना पंख छाया बना और पंख की छाया बना।

टीकाः—(क) अब पुरानी प्रथमजाति के ईथर या एस्ट्रल शरीर पर स्थूलशरीर बन गया और यह दूसरी जाति हो गई। पुराना पंख=ईथर या छायाशरीर। नयी छाया=स्थूलशरीर।

एक टीका में स्पष्ट किया है कि प्रथम ब्रह्मन् से जगत के आरंभ में देवगण हुए। इनसे प्रथम मूलजाति "स्वयंभू" हुई। ये अपने पितृओं से निकली छायामात्र थे। मनबुद्धि, इच्छाशक्ति ये कुछ न थे। इनके एस्ट्रल या ईथर (प्राणमय) शरीर के भीतर परमात्मतत्व (Monad) था, पर वह शरीर से कुछ संबंध न रखता था। दोनों को मिलानेवाले मनका अभी अभाव था।

प्रथम से स्वेदज अस्थिरहित अलिंगी द्वितीय बने। इनमें कुछ बुद्धि कुछ कुमारों और देवों द्वारा आई। इनसे तृतीय उभयलिंगी जाति बनी जिसका आरंभ का भाग तो निरा खाली

शरीरमात्र था, पीछे से ये उभयलिंगी हुई। प्रजोत्पादन काल में इनके शरीर से अंडायुक्त निर्यास निकलता था जो छोटे अंडाकार से बड़ा होने पर धीरे धीरे कड़ा हो जाता था और पीछे से उसमें से छोटा बालक निकलता था जैसे पक्षियों में होता है। इन बालकों में नरमादा का कोई भेद न था पर पीछे की उपजातियों के बालकों में दोनों चिह्न थे। धीरे धीरे विकास द्वारा बालकों में एक चिह्न विशेषता से और दूसरा हीनता से रहने लगा। अंत में नर मादा बिलकुल अलग अलग हो गये।

पद्य खंड ६

अंडज का विकास

श्लोक २२—फिर दूसरी (जाति) से अंडज तृतीय (जाति) उत्पन्न हुई। स्वेद फूला; उसकी बूंदें फूलीं; वे बूंदें कड़ी और गोल हो गईं। सूर्य ने उन्हें ताप दिया; चन्द्रप्रभा ने उन्हें शीतल किया। और रूप दिया। वायु ने पकने तक उनका पोषण किया। तारा मंडल के श्वेत हंस (चन्द्र) ने उन बड़ी बूंदों पर छाया कर रखी। भविष्य जाति का यह अंडा था और अंतिम तृतीय जाति के मनुष्य रूपी हंस का अंड था। प्रथम उभयलिंगी (अर्थात् एक में नर-मादा के दोनों चिन्ह) पीछे से (अलग अलग) नर और नारी।

टीका:—नर नारी का भेद १,८०,००,००० वर्ष पूर्व हुआ था। उसके पूर्व मनुष्य या छायामनुष्य कोई और ३० करोड़ वर्ष पूर्व से रहा होगा।

श्लोक २३—प्रथम स्वयंभू जाति सन्ध्या पुत्र (ब्रह्माके सन्ध्या रूपी शरीर से उत्पन्न हुए पितृओं) के शरीरों से उत्पन्न छायाएँ थीं। पानी और अग्नि उन छायाओं को नष्ट नहीं कर सकते थे। उनके लड़के (इस प्रकार नष्ट) हुए।

प्रथम जाति का शरीर एस्ट्रल या ईथर का। उस पर जल या अग्नि का कुछ भी असर नहीं हो सकता। पर द्वितीय जाति

का शरीर मांस का होने के कारण इस प्रकार नष्ट हो सकता था और वे ऐसे नष्ट भी हुए। प्रत्येक मूलजाति के सप्तम उपजाति की सप्तम अन्तर जाति के पश्चात् प्रलय होता है। इस प्रकार अभी तक चार प्रलय हो गये और आगे पंचम योग्य समय पर आवेगा।

पद्य-खंड ७

अर्द्ध दैवी पुरुषों से प्रथम जाति तक ।

श्लोक २४—ज्ञान के पुत्र (ध्यानी), रात्रि के पुत्र (जो ब्रह्मा के रात्रि काल के शरीर से उत्पन्न हुए थे) जन्म लेने के लिए तैयार थे वे नीचे उतरे। उन्होंने तृतीय मूलजाति के आरम्भ के (बुद्धिहीन) नीचे (मानसिक और बुद्धि की अवस्था के विचार से) रूपों को देखा । ध्यानी बोले "हम लोग चुन सकते हैं; हमें बुद्धि है । कुछ ने उन छायाओं में प्रवेश किया । कुछ ने चिन्गारी डाली । कुछ ने चतुर्थ (जाति) तक जन्म लेना स्थगित रखा । अपने सत्व में से उन्होंने वासना (एस्ट्रल) के शरीर को भर दिया (पुष्ट किया) । जिन्होंने प्रवेश किया वे महात्मा (अर्हत) बन गये । जिनको चिन्गारी मात्र मिली वे (ऊँचे) ज्ञान के बिना रह गये । चिन्गारी में दो जलती थीं, तृतीय भाग मनहीन रहा । उनके विशुद्धात्मा अभी (पुनर्जन्म के लिए) तैयार न थे । इनको सात (आरम्भ की) जातियों में से अलग रख दिया । ये तङ्ग छोटे मस्तिष्क वाले (Narrow-headed) बने (जैसे हाल के ऑस्ट्रेलिया के जंगली निवासी) तीसरी (जाति की तीसरी उपजाति) तैयार थी । मनस और गूढ़ ज्ञान के पति बोले "हम इनमें बसेंगे" ।

टीकाः—सात = सात आदि-मनुष्य प्रकार ।

गूढ़ज्ञान के पति = प्रथम ग्रहमाला के फल ।

तृतीय जाति के आरंभ के = तृतीय मूलजाति का प्रथम अर्द्ध ।

चतुर्थ परिक्रमाकाल तक और तृतीय मूलजाति के पिछले भाग तक, मनुष्य बुद्धि के विचार से पशु ही था । इस चतुर्थ परिक्रमा काल के मध्य में उसका कामरूप या वासनादेह पूरा पूरा विकसित हुआ और मन का वाहन बनने योग्य हुआ । मन का पूरा विकास तो पंचम परिक्रमाकाल में होगा और सप्तम परिक्रमा कालके अंत में पूर्ण शुद्ध और दिव्य बन जायगा ।

जो तैयार थे उनमें 'प्रवेश' किया, अर्थात् जीवात्मारहित शरीर में प्रवेश किया।

श्लोक २५—ज्ञान के पुत्रों (मानस ध्यानियों) ने क्या किया ? उन्होंने स्वयम् (अस्थिहीन प्रथम जातिके) रूपोंको ग्रहण नहीं किया । ये पूरे तैयार न थे । उन्होंने स्वेदज रूपोंका भी तिरस्कार किया । ये पूरे तैयार नहीं हैं । वे प्रथम अंडजों में प्रवेश करने को राजी न थे ।

टीका :—स्वेदज = अस्थिहीन द्वितीय मूलजाति

प्रथमअंडज = तृतीय मूलजाति की आरंभ की जातियाँ

श्लोक २६—जब स्वेदजों से दुहरे (उभयलिंगी तृतीयजाति) अंडज बलवान, अस्थियुक्त शक्तिवान, उत्पन्न हुए, तब ज्ञान के स्वामियों (ध्यानियों) ने कहा, अब हम उत्पन्न करेंगे ।

टीकाः—दुहरे : स्त्री पुरुषों में विभक्त तृतीय जाति ।

श्लोक २७—(तब ही) तृतीय जाति ज्ञान के स्वामियों

के लिए वाहन बनी। उसने क्रियाशक्ति द्वारा इच्छाशक्ति और योग के पुत्र उत्पन्न किये। उन्होंने उनको उत्पन्न किया (जो) अर्हतों के पूर्वज, पवित्र पिता थे।

टीकाः—ज्ञान के स्वामी = पुराणों के कुमार जिन्हें ब्रह्मा ने बनाया था।

पवित्र पिता = मनुष्य जाति के भविष्य रक्षकों के पवित्र बीज, जगत् के ऋषि संघ के उत्पादक जो पवित्र रीति से बनाये गये थे, स्त्री के गर्भ से नहीं।

क्रियाशक्ति = इच्छा और विचार की वह रचनात्मक शक्ति जो अपने बल से बाह्य दृश्य परिवर्तन या कार्य उत्पन्न करती है।

एक टीका में लिखा है कि विकास का क्रम इस प्रकार है :— प्रथम मनुष्य छाया रूप थे, दूसरे स्वेदज, तीसरे अंडज और क्रियाशक्ति से उत्पन्न पवित्र पितृगण, चौथे, पद्मपाणि के (दक्ष के समान तीसरी जाति के पश्चात् सब मनुष्य जातियों के उत्पादक के) बालक थे।

पद्यखंड ८

पशुस्तनपायी का विकास—प्रथम पतन

श्लोक २८—स्वेद की बूँदों से, पूर्व चक्र (तृतीय परिक्रमा काल) के मृत शरीरों की और पशुओं की शेष प्रकृति से और त्यागी हुई धूलि से (इस परिक्रमा काल के) पशु बनाये गये।

टीकाः—इस परिक्रमा में स्तनपायी पशु मनुष्य के पीछे हुए।

श्लोक २९—पूर्व के पेट के बल रेंगने वालों में अब अस्थिवाले—समुद्र के नागों और उड़नेवाले सर्पों की वृद्धि हुई। जो पृथ्वी पर रेंगते थे उन्हें भी पंख हो गये। जो लम्बी गरदन वाले जलचर थे उनसे वायु में उड़नेवाले पक्षी उत्पन्न हुए।

टीकाः—अस्थिवाले = रीढ़वाले।

श्लो० ३०—तृतीय (जाति) के काल में अस्थिविहीन पशु बढ़े और बदले; वे अस्थिवाले (रीढ़वाले) पशु बने। उनके वासना शरीर भी स्थूल हुए।

टीकाः—पूर्व में पशु भी मनुष्य के समान स्थूल शरीर रहित थे, ईथर शरीर के थे।

श्लोक ३१—पशु प्रथम अलग-अलग हुए (=नर मादा

हुए····वे) संतान उत्पन्न करने लगे। उभयलिंगी मनुष्य भी (तब) अलग-अलग (नर नारी) हो गया। उसने कहा, जैसा वे करते हैं, वैसा हम भी करें। हम भी मैथुन क्रिया से संतान उत्पन्न करें। उन्होंने (वैसा) किया।········

टीका :—प्रथम रीढ़वाले और फिर स्तनपायी

श्लोक ३२—और जिन में चिन्गारी नहीं थी (=मंद मगज़ वाले) दुबले बड़े मादा पशुओं से संग किया। उन्होंने उनमें गूंगी संतानें उत्पन्न कीं। स्वयं भी गूंगे ही थे, पर उनकी जिव्हा खुल गयी। उनकी संतान की जिह्वा मूक रही। राक्षसी संतान उन्होंने उत्पन्न की; टेढे, लाल बालों से ढँके, चारो पाँव से चलनेवालों की जाति। एक गूंगी जाति शरम (अपनी पशुउत्पत्ति) को छिपाये रखने के लिए।

टीका :—यह राक्षसी संतान मनुष्य आकृति के बंदर न थे, पर आरंभ का अधबना अपूर्ण मनुष्य था। यह जाति भी अंत में विकासक्रम में बढ़ती सात मार्गों में से एक को ग्रहण करेगी। उस समय की सृष्टि अभी की सृष्टि से विशेष अपूर्ण और स्थूल थी।

पद्य खंड ९

मनुष्य का अंतिम विकास

श्लोक ३३—जिसे (पशुओं के साथ संभोग का पाप) देख, जिनल्हाओं (ध्यानियों) ने मनुष्य नहीं बनाये थे। (बनाने से इनकार किया कि) वे रोने लगे, और बोले

श्लोक ३४—"मन-हीनों ने हमारे भविष्य वासस्थान अपवित्र कर दिये। यह कर्म बना। चलो, हम दूसरे शरीरों में बसें। चलो, हम उन्हें अच्छा ज्ञान सिखावें; नहीं तो इससे भी अधिक बुरी घटना घटजावेंगी"। उन्होंने वैसा किया।

श्लोक ३५—पीछे सब मनुष्य मनस-युक्त हो गये। उन्होंने अ-मनस का पाप देखा।

टीका :—एक टीका में लिखा है कि नीले और लाल मुँहवाले पशु-मनुष्य पिछले युगों में भी थे, वे मनुष्य और पशु की संतान नहीं थे, पर वैसे ही मनुष्यों की संतान थे। इस युग में मनुष्य-पशु-योग से संतान नहीं होती। तब मनुष्य और पशु भी अब से बिलकुल भिन्न थे। इन अर्द्ध-मनुष्यपशुओं की संतान हमारे काल तक चली आई थी। चीन में और टेस्मेनिया (आस्ट्रेलिया) में कुछ जातियाँ ऐसी थीं जिनके शरीर बालों से ढके हुए थे। तृतीय जाति के बालक जन्म से पूर्व ही अंडोंमें नर मादा अलग-अलग होकर जन्मने लगे थे।

धीरे-धीरे नवजात शिशु की शक्तियाँ भी घटने लगीं। चौथी अंतर जाति के अंत में अंडे से निकलने पर बच्चे की चल सकने की शक्ति मारी गई। पंचम अंतर जाति के अंत में संतान जैसे अभी होती है वैसे ही होने लगी। इसमें लाखों वर्ष लग गये।

श्लोक ३६—चतुर्थ मूलजाति में बोल सकने की योग्यता आ गई।

टीका :—प्रथम जाति, मन और स्थूल शरीर के न होने से, वाचाहीन थी। दूसरी जाति में कुछ आवाज़ करने की, केवल स्वरों के बोलने की, शक्ति आई। तृतीय के आरंभ में प्रकृति के सब शब्दों से, बड़े कीड़े और स्तनपायी पशुओं के शब्दों की अपेक्षा, मनुष्यों की बोली कुछ विशेष उन्नत हुई। तृतीय जाति के अंत में स्त्री पुरुष भिन्न भिन्न होने पर एकाक्षरी शब्द बोले जाने लगे। उस समय सारी मनुष्यजाति एक भाषावाली थी पर इतने पर भी ये लोग अपने दैवी शिक्षकों की सहायता से बड़े बड़े नगर बसा सके और सभ्यता बढ़ा सके। तृतीय जाति के अंत के पूर्व विचार-संक्रमण (thought-transference) क्रिया का भी बहुत कुछ उपयोग होता था। छोटे जीवों में तो विचार क्रिया ही बहुत कम थी। जब मन आवे और बुद्धि बढ़े, तब तो विचार क्रिया बढ़ सकेगी। चौथी जाति में विभक्ति वाले और अक्षरों के जोड़ के शब्द बनने लगे।

पंचम जाति की प्रथम भाषा से संस्कृत पीछे से बनी। जो आर्य भारतवर्ष से ८००० ई० पू० सिन्ध, ईरान, कैल्डिया (Chaldea) गये उनकी सन्तान यहूदी हुए।

श्लोक ३७—एक (उभय लिंगी) (androgyne) दो अलग-अलग (स्त्री पुरुष) हो गये। और सब जीवित और रेंगनेवाले प्राणी जो अभी भी एक थे, जैसे बड़े-बड़े मच्छ, पक्षी और शंख सिरवाले सर्प, इन में भी नर-मादा अलग-अलग हो गये।

टीका :—एक टीका में लिखा है :—जब तृतीय जाति में स्त्री पुरुष अलग-अलग हो गये और मनुष्य ने पशुओं के योग से संतान उत्पन्न की, तो ये पशु भयंकर हो गये और ये पशु और मनुष्य एक दूसरे का घात करने लगे। इसके पूर्व कोई पाप न था, न प्राण की हिंसा ही होती थी। स्त्री पुरुष के अलग हो जाने पर सुवर्ण युग (Golden age) का अंत हो गया। नित्य वसंतऋतु का अंत होकर मौसम बदलने लगा। शीत के कारण मनुष्यों को घर बनाने पड़े और कपड़ा बनाने की युक्ति सोचनी पड़ी। निर्माण काय (ज्ञानी सर्प और प्रकाश के सर्प) आये और बुद्ध बननेवाले ज्ञानी पुरुष भी आये। दैवी राजाओं ने मनुष्य को विज्ञान और कलाएँ सिखाईं। क्योंकि मनुष्य अब अपनी प्रथम जन्मभूमि में रह नहीं सकते थे; वह तो बर्फ से जम गये हुए श्वेत मुर्दे के समान बन गई थी।

पद्य खंड १०

चतुर्थ जाति का इतिहास

श्लोक ३८—इस प्रकार दो-दो के जोड़ों से पृथ्वी के सात भागों में तीसरी जाति ने चौथी जाति के मनुष्यों को जन्म दिया। सुर अब असुर हो गये।

टीकाः—सात भाग = प्रत्येक जाति के (भूमि) महाद्वीप पर नियत सात उत्पत्तिकेन्द्र। यहाँ पर लेम्यूरिया के सात भाग।

दो-दो = स्त्री और पुरुष। चौथी जाति ही पूर्ण मनुष्य जाति थी अर्थात् मनुष्य के कोश पूरे-पूरे सब बन गये। इससे भी आगे उन्नति होगी, पर अभी तक शरीर पूरे-पूरे नहीं बन पाये थे। अब सब पूरे-पूरे बन गये।

एक महात्मा अपने पत्र में लिखते हैं कि कई प्रकार के देवों की बनाई ईश्वर शरीरवाली जातियों में और मनुष्यों में (पिछली ग्रहमाला के उन्नत व्यक्तियों में) कार्य की सफलता नहीं होती, पर ये असफल व्यक्ति बहुत कुछ उन्नति और आध्यात्मिकता प्राप्त कर चुके हैं; इसलिए उन्हें नई सृष्टि (नया सूर्यमंडल) के आरंभ की नीची रचना में जबर्दस्ती से नहीं लौटा सकते। जब नई सृष्टि बननेवाली होती है तो ऐसे असफल व्यक्ति पूर्व से ही उस रचना में पहुँचकर मनुष्य की रचनाकाल तक सुषुप्त शक्ति के रूप में बने रहते हैं और मनुष्यरचना में सम्मिलित होकर धीरे-धीरे अपना मनस देकर पूरे-पूरे अर्द्धदेव मनुष्य बनाते हैं जिन बीजों से भविष्य के जीवन्मुक्त महात्मा बनते हैं।

श्लोक ३९—प्रत्येक विभाग की प्रथम (जाति) चंद्र रंग की (=पीत-श्वेत) थी; द्वितीय सुवर्ण समान पीत थी; तीसरी लाल; चौथी भूरी थी, पर पाप से वह काली हो गई। आरम्भ में प्रथम सात शाखाएँ सब एक रंग की थीं, दूसरी सात (अंतर जातियाँ Sub-races) अपने वर्ण मिलाने लगीं।

टीकाः—प्रथम सात शाखाएँ = प्रथम अंतरजाति की। दूसरी सात = दूसरी अंतरजाति की।

श्लोक ४०—फिर तीसरी और चौथी जातियाँ अभिमान से बोली, कि हम ही वे राजा हैं, हम ही वे देव हैं। (क)

श्लोक ४१—वे देखने में सुन्दर स्त्रियों को अपनी स्त्री बनाने लगे। (ख) ये स्त्रियाँ मन-हीनों की और हलके मस्तिष्क वालों की संतान थीं। उनसे विकराल राक्षस उत्पन्न हुए, बुरे दुष्ट राक्षस, पुरुष और स्त्री, स्त्री राक्षस भी जिनमें थोड़ा सा मन था।

श्लोक ४२—उन्होंने मनुष्य शरीर की पूजा के लिए मंदिर बनाये। पुरुष और स्त्री को वे पूजा करते थे। तब से तृतीय नेत्र (दिव्य दृष्टि) ने कार्य करना बन्द कर दिया। (घ)

टीकाः—धर्म (क) तृतीय जाति को मन प्राप्त होने पर वे अज्ञेय, अदृश्य, एक से अपना एकत्व सदैव अनुभव करते थे। इनमें दैवी शक्तियाँ होने के कारण और अंतरस्थित ईश्वर की चेतना सदैव बनी रहने के कारण, प्रत्येक मनुष्य अपने सच्चे स्वभाव से अपने को मनुष्य-ईश्वर जानता था। अपने स्थूल-शरीर की चेतना में तो वह पशु ही था। ज्ञान प्राप्त होने के

दिन से ही उसके आध्यात्मिक और वासना मानसिक में और वासना मानसिक और स्थूल चेतना में कलह और विरोध होने लगा। जीतनेवाले प्रकाश के पुत्र हो गये, हारनेवाले जड़प्रकृति के दास बने। पहिले ये भी प्रकाश के पुत्र थे, पर अंधकार ने उन्हें जीत लिया। येही प्रकृति के गुलाम भविष्य में एटलांटिस जाति के अंत में जादूगर बने। हम पंचम मूलजाति को भी यह जोखिम (खतरा) है।

तृतीयजाति में चेतना आते समय कोई अंधविश्वास का धर्म न था। पर उनको अपने ज्ञानदाताओं के प्रति अति श्रद्धा थी। वे तत्त्वों के देवों को भी देख सकते थे। तृतीय जाति के अंत में अवतारी महापुरुषों ने परकाय प्रवेश की विधि ढूँढ़ निकाली थी।

सात कुमारों में से चार ने संसार के पापों के लिए और ज्ञान फैलाने के लिए अपना बलिदान किया और इस कल्प के अंत तक वे पृथ्वी पर बने रहेंगे। इन महापुरुषों का सहसा नाम उच्चारण करना वर्ज्य है। इन चारों से ऊपर पृथ्वी और स्वर्ग में एक और हैं।

(ख) पृथ्वी की प्रथम लड़ाई और रक्तपात मनुष्यों में मन आने के कारण हुआ। चौथी जाति में उन्हें यह भावना होने लगी कि हमारी स्त्री और कन्या की अपेक्षा दूसरों की कन्याएँ और स्त्रियाँ अधिक सुन्दर हैं, पर इनमें बुद्धि का अभाव है।

(ग) इनको हमारे यहाँ डाकिनी कहते हैं।

(घ) इसी पूजा का परिणाम पीछे से नग्न पूजा और जननेन्द्रियों की पूजा हुआ।

(ङ) इस परिक्रमा काल के पशु और वनस्पति, दोनों जीवों का बीज मनुष्य में ही था। इस परिक्रमाकाल में मनुष्य के बनने तक वनस्पति स्थूल न होकर ईथर की बनी सी थी। पशुओं की श्वास से निकले वायु के कारबोनिक-एसिड-गैस के बिना वनस्पति कैसे जी सकती। वनस्पति और पशु एक दूसरे पर आश्रित हैं। कीड़ों-मकोड़ों के, रेंगनेवालों, और पशु-पक्षियों के शरीरों के बनने में, पूर्व के परिक्रमाकालों में, त्यागे शरीरों की प्रकृतियों ने अनजान में सहायता दी। पूर्वकाल के बड़े ऊँचे मनुष्य (Titans and Cyclopes) चतुर्थजाति के थे; तृतीयजाति के भी बहुत लंबे थे। इनको तीन नेत्र थे। एक टीका में लिखा है:— "उभयलिंगी (Hermaphrodite) मनुष्य के आरंभ में मनुष्य चार हाथों के और एक शिरवाले पर तीन नेत्रोंवाले होते थे। उन्हें अपने आगे पीछे दीख पड़ता था।" तृतीय नेत्र शिर के पीछे की ओर था। मनुष्य के स्त्री-पुरुष अलग होने पर॰ (अर्थात् ४,३२,००,००,००० वर्ष पीछे) मनुष्य विषयों में फँस गया और उसकी दिव्य दृष्टि मंद हो गई और साथ ही तृतीय नेत्र की शक्ति भी जाने लगी। चौथी मूलजाति की तीसरी उपजाति के मध्य में इस दृष्टि को साधना द्वारा जगाना पड़ता था। धीरे धीरे तृतीय नेत्र अदृश्य हो गया। "दो मुखवाले एक मुख के रह गये और यह नेत्र शिर के बहुत भीतर घुस गया और अब बालों के नीचे दबा पड़ा है। समाधि में और दिव्यदृष्टि में यह नेत्र फूलता है और बढ़ता है....ब्रह्मचारी शिष्य को कोई भय नहीं है। अब्रह्मचारी को इस दिव्य नेत्र से कोई सहायता न मिलेगी।"

साधारण मनुष्यों में पीनियल ग्लैंड (Pineal Gland) इस तृतीय नेत्र का अवशिष्ट चिह्न है। इसी को ब्रह्मरन्ध्र या

शिवका स्थान भी कहते हैं।

बहुत से पशुओं में इस तृतीय नेत्र के निशान अब भी उपस्थित हैं। यहाँ यह याद रहे कि प्रथम जाति में मनुष्य भीतर से आध्यात्मिक और बाहर से ईथर का था; द्वितीय जाति में मनुष्यबुद्धि और आध्यात्मिकता भीतर रही और बाह्यशरीर ईथर का और स्थूल रहा। तृतीय में आरंभ में मन न था। स्थूल में वासनादेह और स्थूल शरीर थे। भीतर के जीवन की आध्यात्मिकता में अभी तक नई स्थूल इंद्रियों से कोई बाधा नहीं पड़ती थी। पर तृतीय नेत्र की अपार पहुँच थी। तृतीयजाति के आरंभ में सब जीव उभयलिंगी और एक स्थूल नेत्रवाले थे। तबतक उनके दो नेत्र तैयार नहीं हुए थे।

प्रथम सात करोड़ वर्ष तक पृथ्वी पूरी बन न पाई थी। वह ठंडी प्राणहीन, अर्द्ध पारदर्शक थी बनने के बारह करोड़ वर्ष तक उसकी बनावट में परिवर्तन होता रहा।

पद्य खंड ११

तृतीय और चतुर्थ जातियों की सभ्यता और उनका विनाश

श्लोक ४३—उन्होंने (तृतीय+चतुर्थ जाति ने) बड़े बड़े नगर बनाये। दुष्प्राप्य मिट्टियों और धातुओं के नगर बनाये। (ज्वालामुखी की) अग्नि के उगले पत्थरों को, पर्वतों के श्वेत पत्थरों की और काले पत्थरों की, अपने बराबर ऊँचाई की और अपने आकृतियों की मूर्तियाँ बनाईं और उनकी पूजा की।

टीकाः—ज्वालामुखी अग्नि के उगले पत्थर जम जाते हैं; उन्हें अंग्रेजी में लावा (Lava) कहते हैं। श्वेत पत्थर= संगमर्मर। काला पत्थर=तेलिया (Basalt) पत्थर। ईस्टर द्वीप में प्राप्त २७ फुट ऊँची मूर्तियाँ लेम्यूरियनों की बनाई कही जाती है। कुछ अधबनी भी हैं।

ये बड़े नगर इन्होंने अपने दिव्य शिक्षकों की सहायता से बनाये। विज्ञान और कलाओं का तथा ज्योतिष और गणित और स्थापत्य (architecture) का उन्हें अच्छा ज्ञान था। इस विकास में उन्हें कोई लाखों वर्ष लगे। तृतीय छठवीं अंतर जाति ने भी ऐसे नगर बसाये थे। आरंभ के बड़े नगर मेडेगास्कर में बने थे। धीरे धीरे मनुष्य उँचाई में घटता गया, क्योंकि मनुष्य विषयभोग में, पाप में और अन्याय में फँसता गया। लेम्यूरिया के उत्तम व्यक्ति तो गोबी समुद्र के श्वेत द्वीप को चले गये थे। उनके पतित व्यक्ति जंगलों और गुफाओं में रहते थे। चतुर्थ जाति भी पाप से काली हो गई। तृतीय के

अर्द्ध देवों के बदले अब चतुर्थ के अर्द्धराक्षस थे। लेम्यूरिया में अभी के हिन्द महासागर का विशेष भाग, दक्षिण भारत, लंका, सुमात्रा, मेडेगास्कर, ऑस्ट्रेलिया, टेस्मैनिया, ईस्टर टापू के परे तक और अंटार्टिक रेखा के निकट तक था।

जब पृथ्वी का ध्रुव अपनी दिशा बदलता है और पृथ्वी की दिन रात की गति मंद पड़ जाती है, तब पृथ्वी पर प्रलय होने लगता है। कुछ धरती डूबती है और कुछ नई निकलती है, ऐसा हर मूल जाति के अंत में होता है। तृतीय मूलजाति के बीच में भी हुआ था।

श्लोक ४४—उन्होंने (ऐटलांटियन जाति ने) अपने शरीर के बराबर की, नौ यति (२७ फुट) ऊँची मूर्तियाँ बनाईं। भीतर की अग्नियों ने उनके पूर्वजों की धरती को नाश कर दिया था। चौथी को जल प्रलय से भय था।

टीका:—लेम्यूरिया महाद्वीप ज्वालामुखियों से नष्ट हुआ और ऐटलांटिस जलप्रलयों से। मध्य एशिया में बैमियन (Bamian) एक छोटा अर्द्धनष्ट ग्राम है। यहाँ २० से ३० फुट ऊँची मूर्तियाँ मिली थीं। कुक को ईस्टर द्वीप में २७ फुट ऊँची और ८ फुट चौड़ी मूर्तियाँ मिली थीं

श्लोक ४५—प्रथम बड़े जल आये। उन्होंने सात बड़े द्वीपों को निगल लिया (क)

टीका:—ऐटलांटिस के सात द्वीप बहुत अवसरों पर और कई प्रलयों से नष्ट हुए।

श्लोक ४६—सब पवित्र बच गये; पापी नष्ट हो गये। उनके साथ पृथ्वी के स्वेद से उत्पन्न प्राय: सब विशालकाय पशु भी नष्ट हो गये।

टीका:—सब पवित्र = तृतीय नेत्र वाले। पापी = जादूगर, वाम मार्गी।

विशालकाय पशु = पृथ्वी के नीचे स्थूल जीव (Spirits)

प्रलय प्रकृति का नियम है। उस नियमानुसार प्रलय आया। उस समय पंचम मूलजाति अपनी बाल्यावस्था में थी। ऐटलांटिस में दो तृतीयांश मनुष्यों पर नीचे, स्वार्थी जीव राज्य करते थे। जिन पर सरलता से हो सका, उन्होंने अपना आधिपत्य जमाया। एक तृतीयांश मनुष्य अविभक्त रह कर पंचमजाति में जा मिले। इस समय चौथी बार ध्रुव परिवर्तन हुआ।

पद्य खंड १२

पाँचवीं जाति और उसके दैवी शिक्षक

श्लोक ४७—बहुत थोड़े मनुष्य बच गये। कुछ पीले, कुछ गेहूं वर्ण के (brown) और काले, और कुछ लाल वर्ण के बच गये। चंद्र वर्ण (आदि दिव्य पूर्वज) सदा के लिए जाते रहे (क)

श्लोक ४८—दिव्य पूर्वजों से उत्पन्न पाँचवीं जाति बच गई। प्रथम दिव्य (राजर्षि) राजा उस पर राज्य करते थे। (ख)

श्लोक ४९—ये नाग (राजर्षि, ज्ञानी) जो फिर पृथ्वी पर उतरे, जिन्होंने पाँचवीं जाति के साथ संधि की, जिन्होंने उसे सिखाया और ज्ञान दिया।

टीकाः—चंद्रवर्ण = प्रथम और दूसरी जाति के आदि दिव्य उत्पादक

(क) पीले……काले, लाल = पंचम जाति की प्रथम अंतरजाति के विभाग। नाग जो उतरे = ज्ञानी महात्मा राजर्षि, ऋषि

तृतीय जाति के प्रलय काल में अर्थात् तृतीय प्रलय में।

(ख) तृतीय चौथी और पंचम जाति के महात्मा या ज्ञानी लोग पृथ्वी के नीचे के वास स्थानों में बहुधा कोई ऊँचे स्तंभ के नीचे पृथ्वी में रहते थे। इन ज्ञान के नागों ने अपने ज्ञान ग्रन्थों

की भली प्रकार रक्षा की है। अब भी ये सब सुरक्षित हैं।

आस्ट्रेलिया और उत्तर अमेरिका के युनाइटेड स्टेट्स में छठवीं अंतरजाति बन रही है। कोई २५००० वर्ष पीछे सप्तम अंतर जाति का बनना आरंभ होगा। और छठवी मूलजाति की स्थापना कोई ६०० वर्षों में आरम्भ होगी।

उपसंहार

जैसे वेदांत में निर्गुण ब्रह्म और ईश्वर में भेद है, वैसे ही गुप्त ज्ञान में भी भेद है। ब्रह्म के विषय में हम लोग नेति-नेति "यह नहीं," "यह नहीं" के सिवाय और कुछ नहीं कह सकते। जो कुछ हम विचारें अशुद्ध ही होगा, क्योंकि वह हमारे विचार के परे है। इसे गुप्त ज्ञान में सनातन नियम (Eternal Law) कहा है।

यह निर्गुण ब्रह्म सनातन, सर्वव्यापी, अनन्त, अक्षय, अगोचर, अगम्य, अवर्णनीय है। यह "सत्ता" (Be-ness) है और व्यक्त से इसका कुछ संबंध नहीं है। कभी-कभी इसका संकेत निरपेक्ष आकाश (Space) और कभी निरपेक्ष गति (Absolute Abstract Motion) बताया जाता है। ये उसके दो पहलू या रूप हैं। गति रूपी संकेत की सूचना महा श्वास (the Great Breath) से भी होती है। यह गुप्तज्ञान का प्रथम सिद्धान्त है।

हमलोग सब और सब वस्तुएँ इस निरपेक्ष निर्गुण ब्रह्म (Absolute) में स्थित हैं। प्रत्येक जीवात्मा उस अनंत पूर्ण का अंश है। ऐसा नहीं कि हम उसके बाहर हो कर उसे समझने की चेष्टा करते हैं। हर क्षण हम उस में स्थित हैं, और उसका गूढ़ रहस्य हरक्षण हम में मौजूद है। हम उसके अभेद्य अंग होकर उस पूर्ण का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। अंश, सीमित, होकर भी उस अनन्त स्थिति को प्राप्त होने के लिए हम में सनातन उत्कंठा, पिपासा, अनुराग है। इसका प्रश्न भी हो सकता है कि क्या वह पिपासा कभी शान्त होगी ?

यह निरपेक्ष ब्रह्म एक निरपेक्ष चेतना है जो हमारे लिए अपनी अचिंतनीय पूर्णता में अचेतनता है। उस में बहुत से स्वगत भेद होंगे और हमारे लिए प्रधान भेद ये हैं कि हमारा विश्व जाग्रत है या सुषुप्त, व्यक्त है या अव्यक्त, कल्प का समय है या प्रलय का। जब कल्प का समय आरंभ होनेवाला होता है तब उस सत्ता के भीतर परिवर्तन होता है जिसे हम प्रथम लोगस (Logos) कहते हैं, पर अभी वह अव्यक्त ईश्वर ही है। यह दूसरा दर्जा हुआ।

अव्यक्त ईश्वर से आगे चलने पर आत्मा या परमात्मा या चेतना और मूलप्रकृति दो भेद दिखने लगते हैं। ये दो एक ही निर्गुण ब्रह्म के दो रूप, दो छोर हैं। येही विष्णु रूप हुए। इन्हीं दो से सारा व्यक्त जगत बनता है। इन दोनों के मिलाने वाले को गुप्तज्ञान में Fiery Whirlwind या अग्नि रूप बबूला या बगूला भी कहते हैं। यह एक पुल है जिसके द्वारा दैवी विचार मूलप्रकृति में प्रकृति के नियमों (Laws of Nature) के रूप में अंकित हो जाता है। यह अग्नि रूप बगूला इस प्रकार ईश्वर की विश्वविचार क्रिया (Cosmic Ideation) की संचालक शक्ति है; वह सब व्यक्त जगत् को ठीक मार्ग से चलाती है। इसी प्रकार हमारी चेतना उस ईश्वर से या उसकी विश्वविचार क्रिया से, और हमारे कोष और लोक उस मूलप्रकृति से बनते हैं। यह ईश्वर या लोगस (Logos) तीन रूपों में प्रगट होता है। हिन्दू ग्रंथ प्रथम लोगस को शिव, दूसरे को विष्णु, तीसरे को ब्रह्मा कहते हैं। एक ही वस्तुको उसने पृथक-पृथक कार्य की दृष्टि से ये नाम दिये गये हैं। प्रथम शिव रूप में व्यक्तित्व भाव नहीं है। प्रकृति-पुरुष, जीवन (Life), विश्वका ईश्वर, यह दूसरा लोगस या विष्णु हुआ। विश्वसंम्बंधी विचारक्रिया (Cosmic

Ideation) विश्वव्यापी परमात्मा, मूलप्रकृति का तत्त्व, प्रकृति की बुद्धियुक्त क्रिया, ये तृतीय मूर्ति ब्रह्मा के कार्य हैं।

यह महाविश्व अनन्त है। इनमें अनंत विश्वों की उत्पत्ति और प्रलय होती रहती हैं।

अब प्रथम भाग के सात पद्यखंडों के विषय में यहाँ कुछ खुलासा किया जाता है। सारे महाविश्व के विकास के संबंध का गुप्त ज्ञान इस युग में कोई न समझ सकेगा। बहुत कम जीवन्मुक्त महात्मा भी इस विषय में तर्क करते हैं। ये पद्यखंड (Stanzas) हमारे सूर्यमंडल रूपी विश्व की और विशेषकर हमारे पृथ्वीमाला की उत्पत्ति और विकास का ही वर्णन करते हैं। ऊँचे से ऊँचे देव या आत्माएँ इन अनंत विश्वों के परे की व्यवस्था को नहीं जान सके हैं और न इन अनंत विश्वों के परे उस महासूर्य अर्थात् सब सूर्यों के परम सूर्य के राज्य में प्रवेश कर सके हैं।

सब जीवात्मा मूलतः परमात्मा से एक हैं और परमात्मा निर्गुण ब्रह्म का एक रूप है। प्रत्येक जीवात्मा को अज्ञान अवस्था में नीचे उतर कर जन्म मरण द्वारा उन्नति प्राप्तकर, पूर्ण ज्ञान प्राप्तकर, अपने निज रूप को फिर प्राप्त करना पड़ता है। उसकी उन्नति का अंत नहीं है।

सार रूप में लिखी बातों को इस प्रकार कह सकते हैं कि निर्गुण परब्रह्म के दो बाजू हैं, पहला अनपेक्ष अवकाश (Space) और दूसरा अनपेक्ष गति। अनपेक्षगति को दीर्घश्वास, शुद्ध अबद्ध चेतना और आत्मतत्व भी कहते हैं। मूलप्रकृति अवकाश का ही रूपान्तर है। मूलप्रकृति और आत्मतत्व दोनों एक दूसरे के आश्रित हैं।

समाप्त

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ		पंक्ति		अशुद्ध	शुद्ध
पृष्ठ	३	पंक्ति नीचे से	२	रेश्वा	रेखा
,,	११	,, ,,	२	भगभग	लगभग
,,	१९	,, ,,	८	गूढ़ अव्यक्त	गूढ़ तथा अव्यक्त
,,	२०	,, ऊपर से	१	मल प्रकृति	मूल प्रकृति
,,	२२	,, नीचे से	१	(वे मिट चुके थे)	यह अंश पंक्ति २ में 'न था' के बाद और 'और विश्व' से पहले होना चाहिए
,,	२४	,, ऊपरसे	१० तथा १२	जीवन मुक्त	जीवन्मुक्त
,,	२५	,, ,,	३	(Mind)में ऊँचे	(Mind) से ऊँचे
,,	२५	,, नीचे से	४	अद्वितीय	अब द्वितीय
,,	३०	,, ,,	१०	नहीं होता।	नहीं होते।
,,	३१	,, ऊपर से	५	यह अंधका।	यह अंधकार
,,	३१	,, ,,	६	(चलता) हे र	चलता है।
,,	३४	,, ,,	३	अन्धकार	टीका—अन्धकार
,,	४२	,, नीचे से	३	त्रिकोण घन	त्रिकोण, घन
,,	४२	,, ,,	२	बनानेवाली	बनानेवालीं
,,	५१	,, ,,	३	Ring Pass not	Ring Pass-not
,,	५२	,, ,,	१२	वर्ष पयंत	वर्ष पर्यंत
,,	५५	,, ,,	४	पृथवी	पृथ्वी
,,	५७	,, ऊपर से	४	सू मंडल	सूर्य मंडल
,,	६०	,, ,,	५	होंगे।	होवें।
,,	६२	,, अंतिम पंक्ति		(जीव तत्त्व)	(जीवन तत्त्व)
,,	६३	,, नीचे से	५	ब्रह्मन् का	ब्रह्मन् की
,,	६६	,, ऊपर से	४	मालाये २२	माला में हर

,,	,,	,,	,,	९	विकास चान्द्र	विकास संबंधी, चान्द्र
,,	,,	,,	,,	१०	परिमित और	विकसित,
,,	,,	,,	,,	११	क्षणभंगुर	अस्थायी,
,,	७३	,,	नीचे से	१०	संतान भी	संतान में,
,,	७५	,,	ऊपर से	३	जोल्हा	जो लाहा
,,	,,	,,	,,	४	है । वह	है वह
,,	७६	,,	अंतिम पंक्ति		पुत्र अमर हैं ।	पुत्र अमर नहीं हैं।
,,	८५	,,	ऊपर से	८	दे देते है ।	दे चुके हैं ।
,,	८७	,,	,,	२१	पीछे····देखिये ।	(इस वाक्य को काट दीजिये)
,,	९०	,,	,,	९	था और अंतिम	था अर्थात् अंतिम
,,	९३	,,	नीचे से	२	मे विभक्त	में अविभक्त
,,	९३	,,	ऊपर से	७	वाले) दुबले	वाले) उन्होंने
,,	९७	,,	,,	४	बनाये थे ।	बनाये थे,
,,	,,	,,	,,	५	किया कि)	किया था)
,,	१०१	,,	,,	९	बोली,	बोलीं,
,,	,,	,,	,,	१३	स्त्री राक्षस भी	स्त्री राक्षस (ग) भी
,,	,,	,,	,,	१५	स्त्री का वे	स्त्री की वे
,,	,,	,,	,,	१७	धर्म	(इस शब्द को निकाल दीजिये)
,,	१०२	,,	नीचे से	६	हुआ ।	हुए ।
,,	१०६	,,	,,	३	(क)	(काट दीजिये)
,,	११२	,,	ऊपर से	३	इनमें	इसमें
,,	,,	,,	,,	४	होती रहती हैं	होते रहते हैं

नोट—अक्षर, अनुस्वार, मात्राएँ तथा विराम चिह्न जहाँ टूट गये हों, उन्हें सुधार कर पढ़िये ।